

नमो नमो निम्मलदंसणस्स
बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नमः
पूज्य आनन्द-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

आगम-४२

दशवैकालिक
आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

अनुवादक एवं सम्पादक

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

आगम हिन्दी-अनुवाद-श्रेणी पुष्प-४२

४५ आगम वर्गीकरण					
क्रम	आगम का नाम	सूत्र	क्रम	आगम का नाम	सूत्र
०१	आचार	अंगसूत्र-१	२५	आतुरप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-२
०२	सूत्रकृत्	अंगसूत्र-२	२६	महाप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-३
०३	स्थान	अंगसूत्र-३	२७	भक्तपरिज्ञा	पयन्नासूत्र-४
०४	समवाय	अंगसूत्र-४	२८	तंदुलवैचारिक	पयन्नासूत्र-५
०५	भगवती	अंगसूत्र-५	२९	संस्तारक	पयन्नासूत्र-६
०६	ज्ञाताधर्मकथा	अंगसूत्र-६	३०.१	गच्छाचार	पयन्नासूत्र-७
०७	उपासकदशा	अंगसूत्र-७	३०.२	चन्द्रवेध्यक	पयन्नासूत्र-७
०८	अंतकृत् दशा	अंगसूत्र-८	३१	गणिविद्या	पयन्नासूत्र-८
०९	अनुत्तरोपपातिकदशा	अंगसूत्र-९	३२	देवेन्द्रस्तव	पयन्नासूत्र-९
१०	प्रश्रव्याकरणदशा	अंगसूत्र-१०	३३	वीरस्तव	पयन्नासूत्र-१०
११	विपाकश्रुत	अंगसूत्र-११	३४	निशीथ	छेदसूत्र-१
१२	औपपातिक	उपांगसूत्र-१	३५	बृहत्कल्प	छेदसूत्र-२
१३	राजप्रश्रिय	उपांगसूत्र-२	३६	व्यवहार	छेदसूत्र-३
१४	जीवाजीवाभिगम	उपांगसूत्र-३	३७	दशाश्रुतस्कन्ध	छेदसूत्र-४
१५	प्रज्ञापना	उपांगसूत्र-४	३८	जीतकल्प	छेदसूत्र-५
१६	सूर्यप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-५	३९	महानिशीथ	छेदसूत्र-६
१७	चन्द्रप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-६	४०	आवश्यक	मूलसूत्र-१
१८	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-७	४१.१	ओघनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
१९	निरयावलिका	उपांगसूत्र-८	४१.२	पिंडनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
२०	कल्पवतंसिका	उपांगसूत्र-९	४२	दशवैकालिक	मूलसूत्र-३
२१	पुष्पिका	उपांगसूत्र-१०	४३	उत्तराध्ययन	मूलसूत्र-४
२२	पुष्पचूलिका	उपांगसूत्र-११	४४	नन्दी	चूलिकासूत्र-१
२३	वृष्णिदशा	उपांगसूत्र-१२	४५	अनुयोगद्वार	चूलिकासूत्र-२
२४	चतुःशरण	पयन्नासूत्र-१	---	-----	-----

मुनि दीपरत्नसागरजी प्रकाशित साहित्य					
आगम साहित्य			आगम साहित्य		
क्र	साहित्य नाम	बूक्स	क्रम	साहित्य नाम	बूक्स
1	मूल आगम साहित्य:-	147	6	आगम अन्य साहित्य:-	10
	-1- आगमसुत्ताणि-मूलं prin	[49]		-1- आगम कथानुयोग	06
	-2- आगमसुत्ताणि-मूलं Net	[45]		-2- आगम संबंधी साहित्य	02
	-3- आगममञ्जूषा (मूल प्रत)	[53]		-3- ऋषिभाषित सूत्राणि	01
2	आगम अनुवाद साहित्य:-	165		-4- आगमिय सूक्तावली	01
	-1- आगमसूत्र गुजराती अनुवाद	[47]		आगम साहित्य- कुल पुस्तक	516
	-2- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद Net	[47]			
	-3- AagamSootra English Trans.	[11]			
	-4- आगमसूत्र सटीक गुजराती अनुवाद	[48]			
	-5- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद prin	[12]		अन्य साहित्य:-	
3	आगम विवेचन साहित्य:-	171	1	तत्त्वाभ्यास साहित्य-	13
	-1- आगमसूत्र सटीक	[46]	2	सूत्राभ्यास साहित्य-	06
	-2- आगमसूत्राणि सटीक प्रताकार-1	[51]	3	व्याकरण साहित्य-	05
	-3- आगमसूत्राणि सटीक प्रताकार-2	[09]	4	व्याख्यान साहित्य-	04
	-4- आगम चूर्ण साहित्य	[09]	5	जिनभक्ति साहित्य-	09
	-5- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-1	[40]	6	विधि साहित्य-	04
	-6- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-2	[08]	7	आराधना साहित्य	03
	-7- सचूर्णिक आगमसुत्ताणि	[08]	8	परिचय साहित्य-	04
4	आगम कोष साहित्य:-	14	9	पूजन साहित्य-	02
	-1- आगम सदकोसो	[04]	10	तीर्थकर संक्षिप्त दर्शन	25
	-2- आगम कहाकोसो	[01]	11	प्रकीर्ण साहित्य-	05
	-3- आगम-सागर-कोष:	[05]	12	दीपरत्नसागरना लघुशोधनिबंध	05
	-4- आगम-शब्दादि-संग्रह (प्रा-सं-गु)	[04]		आगम सिवायनु साहित्य कुल पुस्तक	85
5	आगम अनुक्रम साहित्य:-	09			
	-1- आगम विषयानुक्रम- (मूल)	02		1-आगम साहित्य (कुल पुस्तक)	516
	-2- आगम विषयानुक्रम (सटीक)	04		2-आगमेतर साहित्य (कुल	085
	-3- आगम सूत्र-गाथा अनुक्रम	03		दीपरत्नसागरजी के कुल प्रकाशन	601
मुनि दीपरत्नसागरनुं साहित्य					
1	मुनि दीपरत्नसागरनुं आगम साहित्य	[कुल पुस्तक 516]	तेना कुल पाना	[98,300]	
2	मुनि दीपरत्नसागरनुं अन्य साहित्य	[कुल पुस्तक 85]	तेना कुल पाना	[09,270]	
3	मुनि दीपरत्नसागर संकलित 'तत्त्वार्थसूत्र'नी विशिष्ट DVD		तेना कुल पाना	[27,930]	
अमारा प्रकाशनो कुल ९०१ + विशिष्ट DVD कुल पाना 1,35,500					

[४२] दशवैकालिक मूलसूत्र-३- हिन्दी अनुवाद

अध्ययन-१-द्रुमपुष्पिका

सूत्र - १

धर्म उत्कृष्ट मंगल है। उस धर्म का लक्षण है – अहिंसा, संयम और तप। जिसका मन सदा धर्म में लीन रहता है उसे देव भी नमस्कार करते हैं।

सूत्र - २

जिस प्रकार भ्रमर, वृक्षों के पुष्पों में से थोड़ा-थोड़ा रस पीता है तथा पुष्प को पीड़ा नहीं पहुँचाता और वह अपने आपको तृप्त कर लेता है।

सूत्र - ३

उसी प्रकार लोक में जो मुक्त, श्रमण साधु हैं, वे दान-भक्त की एषणा में रत रहते हैं; जैसे भौरे फूलों में।

सूत्र - ४

हम इस ढंग से वृत्ति भिक्षा प्राप्त करेंगे, (जिससे) किसी जीव का उपहनन न हो, जिस प्रकार भ्रमर अनायास प्राप्त, फूलों पर चले जाते हैं, (उसी प्रकार) श्रमण भी गृहस्थों के द्वारा अपने लिए सहजभाव से बनाए हुए, आहार के लिए, उन घरों में भिक्षा के लिए जाते हैं।

सूत्र - ५

जो बुद्ध पुरुष मधुकर के समान अनिश्रित हैं, नाना [विध अभिग्रह से युक्त होकर] पिण्डों में रत हैं और दान्त हैं, वे अपने गुणों के कारण साधु कहलाते हैं। - ऐसा मैं कहता हूँ।

अध्ययन-१ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-२ - श्रामण्यपूर्वक

सूत्र - ६

जो व्यक्ति काम (-भोगों) का निवारण नहीं कर पाता, वह संकल्प के वशीभूत होकर पद-पद पर विषाद पाता हुआ श्रामण्य का कैसे पालन कर सकता है ?

सूत्र - ७

जो (व्यक्ति) परवश होने के कारण वस्त्र, गंध, अलंकार, स्त्रियों, शय्याओं और आसनादि का उपभोग नहीं करते, (वास्तव में) वे त्यागी नहीं कहलाते ।

सूत्र - ८

त्यागी वही कहलाता है, जो कान्त और प्रिय भोग उपलब्ध होने पर भी (उनकी ओर से) पीठ फेर लेता है और स्वाधीन रूप से प्राप्त भोगों का (स्वेच्छा से) त्याग करता है।

सूत्र - ९

समभाव की प्रेक्षा से विचरते हुए (साधु का) मन कदाचित् (संयम से) बाहर निकल जाए, तो 'वह (स्त्री या कोई काम्य वस्तु) मेरी नहीं है, और न मैं ही उसका हूँ' इस प्रकार का विचार करके उस पर से राग को हटा ले ।

सूत्र - १०

आतापना ले, सुकुमारता का त्याग कर । कामभोगों का अतिक्रम कर । (इससे) दुःख स्वतः अतिक्रान्त होगा। द्वेषभाग का छेदन कर, रागभाव को दूर कर । ऐसा करने से तू संसार में सुखी हो जाएगा ।

सूत्र - ११, १२

अगन्धनकुल में उत्पन्न सर्प प्रज्वलित दुःसह अग्नि में कूद जाते हैं, किन्तु वमन किये हुए विष को वापिस चूसने की इच्छा नहीं करते ।

हे अपयश के कामी ! तुझे धिक्कार है ! जो तू असंयमी जीवन के लिए वमन किये हुए को पीना चाहता है, इस से तो तेरा मर जाना ही श्रेयस्कर है ।

सूत्र - १३

मैं भोजराजा की पुत्री हूँ, और तू अन्धकवृष्णि का पुत्र है । उत्तम कुल में उत्पन्न हम दोनों गन्धन कुलोत्पन्न सर्प के समान न हों । (अतः) तू स्थिरचित्त हो कर संयम का पालन कर ।

सूत्र - १४

तू जिन-जिन नारियों को देखेगा, उनके प्रति यदि इस प्रकार रागभाव करेगा तो वायु से आहत हड वनस्पति की तरह अस्थिरात्मा हो जाएगा ।

सूत्र - १५

उस संयती के सुभाषित वचनों को सुन कर वह धर्म में उसी प्रकार स्थिर हो गया जिस प्रकार अंकुश से हाथी स्थिर हो जाता है ।

सूत्र - १६

सम्बुद्ध, प्रविचक्षण और पण्डित ऐसा ही करते हैं । वे भोगों से उसी प्रकार निवृत्त हो जाते हैं, जिस प्रकार वह पुरुषोत्तम रथनेमि हुए ।

अध्ययन-२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-३ – क्षुल्लकाचार कथा**सूत्र - १७**

जिनकी आत्मा संयम से सुस्थित है; जो बाह्य-आभ्यन्तर-परिग्रह से विमुक्त हैं; जो त्राता हैं; उन निर्ग्रन्थ महर्षियों के लिए ये अनाचीर्ण या अग्राह्य हैं –

सूत्र - १८

औद्देशिक (निर्ग्रन्थ के निमित्त से बनाया गया), क्रीत-साधु के निमित्त खरीदा हुआ, नित्याग्र-निमंत्रित करके दिया जानेवाला), अभिहृत-सम्मुख लाया गया, रात्रिभोजन, स्नान, गन्ध, माल्य, वीजनपंखा झेलना ।

सूत्र - १९

सन्निधि-(खाद्य पदार्थों का संयच), गृहि-अमत्र गृहस्थ के बर्तन में भोजन, राजपिण्ड, किमिच्छक-'क्या चाहते हो ?' ऐसा पूछ कर दिया जानेवाला, सम्बाधन-अंगमर्दन, दंतधावन, सम्पृच्छना-गृहस्थों से कुशल आदि पूछना, देहप्रलोकन (दर्पण आदि में शरीर को देखना)

सूत्र - २०

अष्टापद (शतरंज खेलना), नालिका-पासा का जुआ खेलना, छत्रधारण करना, चिकित्सा कर्म-चिकित्सा करना-कराना, उपानह – जूते आदि पहनना, ज्योति-समारम्भ-(अग्नि प्रज्वलित करना) ।

सूत्र - २१

शय्यातरपिण्ड-स्थानदाता से आहार लेना, आसन्दी-कुर्सी या खाट पर बैठना, पर्यक पलंग, ढोलिया आदि पर बैठना, गृहान्तरनिषद्या-गृहस्थ के घर में बैठना और गात्रउद्धर्तन-शरीर पर उबटन लगाना ।

सूत्र - २२

गृहि-वैयावृत्य-गृहस्थ की सेवा-शुश्रूषा करना, आजीववृत्तित्ता-शिल्प, जाति, कुल का अवलम्बन लेकर आजीविका करना, तप्ताऽनिर्वृतभोजित्व-अर्धपक्व आहारपानी का उपभोग करना, आतुरस्मरण-आतुरदशा में पूर्वभुक्त भोगों का स्मरण करना)।

सूत्र - २३

अनिर्वृतमूलक-अपक्व सचित्त मूली, श्रृङ्गबेर-अदरख, इक्षुखण्ड-सजीव ईख के टुकड़े, सचित्त कन्द, मूल, आमक फल-कच्चा फल, बीज (अपक्व बीज लेना व खाना) ।

सूत्र - २४

आमक सौवर्चल-अपक्व सेंवलनमक, सैन्धव-लवण, रुमा लवण, अपक्व समुद्री नमक, पांशु-क्षार, काल-लवण लेना व खाना ।

सूत्र - २५

धूपन-धूप देना, वमन, बस्तिकर्म, विरेचन, अंजन, दंतधावन, गात्राभ्यंग मालिश करना और विभूषण-विभूषा करना।

सूत्र - २६

'जो संयम (और तप) में तल्लीन हैं, वायु की तरह लघुभूत होकर विहार करते हैं, तथा जो निर्ग्रन्थ महर्षि हैं, उनके लिए ये सब अनाचीर्ण-अनाचरणीय हैं ।'

सूत्र - २७

वे निर्ग्रन्थ पांच आश्रवों को परित्याग करने वाले, तीन गुप्तियों से गुप्त, षड्जीवनिकाय के प्रति संयमशील, पांच इन्द्रियों का निग्रह करने वाले, धीर और ऋजुदर्शी होते हैं ।

सूत्र - २८

(वे) सुसमाहित संयमी ग्रीष्मऋतु में आतापना लेते हैं; हेमन्त ऋतु में अपावृत हो जाते हैं, और वर्षाऋतु में प्रतिसंलीन हो जाते हैं ।

सूत्र - २९

(वे) महर्षि परीषहरूपी रिपुओं का दमन करते हैं; मोह को प्रकम्पित कर देते हैं और जितेन्द्रिय (होकर) समस्त दुःखों को नष्ट करने के लिए पराक्रम करते हैं ।

सूत्र - ३०

दुष्कर क्रियाओं का आचरण करके तथा दुःसह को सहन कर, उन में से कई देवलोक में जाते हैं और कई नीरज-कर्म रहित होकर सिद्ध हो जाते हैं ।

सूत्र - ३१

सिद्धिमार्ग को प्राप्त, त्राता (वे निर्ग्रन्थ) संयम और तप के द्वारा पूर्व-कर्मों का क्षय करके परिनिर्वृत्त हो जाते हैं । - ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-३ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-४ छह जीवनिकाय

सूत्र - ३२

हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है, उन भगवान् ने कहा-इस निर्ग्रन्थ-प्रवचन में निश्चित ही षड्जीवनिकाय नामक अध्ययन प्रवेदित, सुआख्यात और सुप्रज्ञप्त है। (इस) धर्मप्रज्ञप्ति (जिसमें धर्म की प्ररूपणा है) अध्ययन का पठन मेरे लिए श्रेयस्कर है ? वह 'षड्जीवनिकाय' है- पृथ्वीकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीव।

शस्त्र-परिणत के सिवाय पृथ्वी सचित्त है, वह अनेक जीवों और पृथक् सत्त्वों वाली है। इसी तरह शस्त्र-परिणत को छोड़ कर अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पति सजीव है। वह अनेक जीवों और पृथक् सत्त्वों वाली है। उसके प्रकार ये हैं - अग्रबीज, मूलबीज, पर्वबीज, स्कन्धबीज, बीजरुह, सम्मूर्च्छिम तृण और लता। शस्त्र - परिणत के सिवाय (ये) वनस्पतिकायिक जीव बीज-पर्यन्त सचेतन कहे गए हैं। वे अनेक जीव हैं और पृथक् सत्त्वों वाले हैं।

(स्थावरकाय के) अन्तर ये जो अनेक प्रकार के त्रस प्राणी हैं, वे इस प्रकार हैं - अण्डज, पोतज, रसज, संस्वेदज, सम्मूर्च्छिम, उद्भिज्ज (और) औपपातिक। जिन किन्हीं प्राणियों में अभिक्रमण, प्रतिक्रमण, संकुचित होना, शब्द करना, भ्रमण करना, त्रस्त होना, भागना आदि क्रियाएँ हों तथा जो आगति और गति के विज्ञाता हो, (वे सब त्रस हैं।) जो कीट और पतंगे हैं, तथा जो कुन्थु और पिपीलिका हैं, वे सब द्वीन्द्रिय, सब त्रीन्द्रिय तथा समस्त पंचेन्द्रिय जीव तथा-समस्त तिर्यञ्चयोनिक, समस्त नारक, समस्त मनुष्य, समस्त देव और समस्त प्राणी परम सुख-स्वभाववाले हैं। यह छट्ठा जीवनिकाय त्रसकाय कहलाता है।

सूत्र - ३३

'इन छह जीवनिकायों के प्रति स्वयं दण्ड-समारम्भ न करे, दूसरों से दण्ड-समारम्भ न करावे और दण्डसमारम्भ करनेवाले अन्य का अनुमोदन भी न करे।' भंते ! मैं यावज्जीवन के लिए तीन करण एवं तीन योग से आरंभ न करूंगा, न कराउंगा, करनेवाले का न अनुमोदन करूंगा। भंते ! मैं उस (अतीत में किये हुए) दण्डसमारम्भ से प्रतिक्रमण करता हूँ, उस की निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और उस का व्युत्सर्ग करता हूँ। भंते ! मैं प्रथम महाव्रत (-पालन) के लिए उपस्थित हुआ हूँ। जिस में सर्वप्रकार के प्राणातिपात से विरत होना होता है।

सूत्र - ३४

भंते ! पहले महाव्रत में प्राणातिपात से विरमण करना होता है। हे भदन्त मैं सर्व प्रकार के प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ। सूक्ष्म बादर त्रस स्थावर कीसी का भि अतिपात न करना, न करवाना, अनुमोदन करना। यह प्रतिज्ञा यावज्जीवन के लिए मैं तीन योग-तीन करण से करता हूँ।

सूत्र - ३५

भंते ! द्वितीय महाव्रत में मृषावाद के विरमण होता है। भंते ! मैं सब प्रकार के मृषावाद का प्रत्याख्यान करता हूँ। क्रोध से, लोभ से, भय से या हास्य से, स्वयं असत्य न बोलना, दूसरों से नहीं बुलवाना और दूसरे वालों का अनुमोदन न करना; इस प्रकार की प्रतिज्ञा मैं यावज्जीवन के लिए, तीन करण, तीन योग से करता हूँ। (अर्थात्) मैं मन से, वचन से, काया से मृषावाद स्वयं नहीं करूंगा, न कराउंगा और करने वाले का अनुमोदन न करूंगा। भंते ! मैं उस से निवृत्त होता हूँ; निन्दा करता हूँ; गर्हा करता हूँ और (मृषावाद से युक्त) आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ। भंते ! मैं द्वितीय महाव्रत के लिए उपस्थित हुआ हूँ, (जिसमें) सर्व-मृषावाद से विरत होना होता है

सूत्र - ३६

भंते ! तृतीय महाव्रत में अदत्तादान से विरति होती है। भंते ! मैं सब प्रकार के अदत्तादान का प्रत्याख्यान

करता हूँ। जैसे कि-गाँव में, नगर में या अरण्य में अल्प या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त हो या अचित्त, अदत्त वस्तु का स्वयं ग्रहण न करना, दूसरों से ग्रहण न कराना और ग्रहण करने वाले किसी का अनुमोदन न करना; यावज्जीवन के लिए तीन करण, तीन योग से; मैं मन से, वचन से, काया से स्वयं (अदत्त वस्तु को ग्रहण) नहीं करूंगा, न ही दूसरों से कराऊंगा और ग्रहण करने वाले अन्य किसी का अनुमोदन भी नहीं करूंगा। भंते ! मैं तृतीय महाव्रत के लिए उपस्थित हुआ हूँ, (जिसमें) सर्व-अदत्तादान से विरत होना होता है।

सूत्र - ३७

चतुर्थ महाव्रत में मैथुन से निवृत्त होना होता है। मैं सब प्रकार के मैथुन का प्रत्याख्यान करता हूँ। जैसे कि देव-सम्बन्धी, मनुष्य-सम्बन्धी अथवा तिर्यञ्च-सम्बन्धी मैथुन का स्वयं सेवन न करना, दूसरों से न कराना और करनेवालों का अनुमोदन न करना; यावज्जीवन के लिए, तीन करण तीन योग से मैं मन से, वचन से, काया से स्वयं मैथुन-सेवन न करूंगा, नहीं कराऊंगा और नहीं करनेवाले का अनुमोदन करूंगा। भंते ! मैं इससे निवृत्त होता हूँ। निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और मैथुनसेवनयुक्त आत्मा व्युत्सर्ग करता हूँ। भंते ! मैं चतुर्थ महाव्रत के लिए उपस्थित हुआ हूँ, जिसमें सब प्रकार के मैथुन-सेवन से विरत होना होता है।

सूत्र - ३८

पंचम महाव्रत में परिग्रह से विरत होना होता है। भंते ! मैं सब प्रकार के परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ, जैसे कि-गाँव में, नगर में या अरण्य में, अल्प या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त परिग्रह का परिग्रहण स्वयं न करे, दूसरों से नहीं कराए और न ही करनेवाले का अनुमोदन करे; यावज्जीवन के लिए, तीन करण, तीन योग से मैं मन से, वचन से, काया से परिग्रह-ग्रहण नहीं करूंगा, न कराऊंगा और न करने वाले का अनुमोदन करूंगा। भंते ! मैं उससे से निवृत्त होता हूँ, गर्हा करता हूँ और परिग्रह-युक्त आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ। भंते ! मैं पंचम-महाव्रत के लिए उपस्थित हूँ, (जिसमें) सब प्रकार के परिग्रह से विरत होना होता है।

सूत्र - ३९

भंते ! छठे व्रत में रात्रिभोजन से निवृत्त होना होता है। भंते ! मैं सब प्रकार के रात्रिभोजन का प्रत्याख्यान करता हूँ। जैसे कि-अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का रात्रि में स्वयं उपभोग न करे, दूसरों को न कराए और न करनेवाले का अनुमोदन करे, यावज्जीवन के लिए, तीन करण, तीन योग से मैं मन से, वचन से काया से, स्वयं रात्रिभोजन नहीं करूंगा; न कराऊंगा और न अनुमोदन करूंगा। भंते ! मैं उससे निवृत्त होता हूँ, उनकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और रात्रिभोजनयुक्त आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ। भंते ! मैं छठे व्रत के लिए उपस्थित हुआ हूँ, जिसमें सब प्रकार के रात्रि-भोजन से विरत होना होता है।

सूत्र - ४०

इस प्रकार मैं इन पांच महाव्रतों और रात्रिभोजन-विरमण रूप छठे व्रत को आत्महित के लिए अंगीकार करके विचरण करता हूँ।

सूत्र - ४१

भिक्षु अथवा भिक्षुणी, जो कि संयत है, विरत है, जो पापकर्मों का निरोध और प्रत्याख्यान कर चुका है, दिन में या रात में, एकाकी हो या परिषद् में, सोते अथवा जागते; पृथ्वी, भित्ति, शिला, ढेले को, सचित्त रज से संसृष्ट काय, या वस्त्र को, हाथ, पैर, काष्ठ अथवा काष्ठ खण्ड से, अंगुलि, लोहे की सलाई, शलाकासमूह से, आलेखन, विलेखन, घट्टन और भेदन न करे; दूसरे से न कराए; तथा करने वाले अन्य किसी का अनुमोदन न करे;

भंते ! मैं यावज्जीवन के लिए, तीन करण तीन योग से स्वयं पृथ्वीकाय-विराधना नहीं करूंगा, न कराऊंगा और न करने वाले अन्य किसी का अनुमोदन करूंगा। भंते ! मैं उस से निवृत्त होता हूँ; उसकी निन्दा

करता हूँ; गर्हा करता हूँ, (उक्त) आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

सूत्र - ४२

वह भिक्षु अथवा भिक्षुणी, जो कि संयत है, विरत है, तथा जिसने पापकर्मों का निरोध और प्रत्याख्यान किया है; दिन में अथवा रात में, एकाकी या परिषद् में, सोते या जागते; उदक, ओस, हिम, धुंअर, ओले, जलकण, शुद्ध उदक, अथवा जल से भीगे हुए शरीर या वस्त्र को, जल से स्निग्ध शरीर अथवा वस्त्र को थोड़ा-सा अथवा अधिक संस्पर्श, आपीडन या प्रपीडन, आस्फोटन, आतापन और प्रतापन स्वयं न करे; दूसरों से न कराए और करने वाले अन्य किसी का अनुमोदन न करे ।

भंते ! यावज्जीवन के लिए, तीन करण-तीन योग से, मैं मन से, वचन से, काया से; अप्काय की पूर्वोक्त विराधना स्वयं नहीं करूंगा, नहीं कराऊंगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूंगा । भंते ! मैं उस से निवृत्त होता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

सूत्र - ४३

संयत, विरत, प्रतिहत और प्रत्याख्यात-पापकर्मा वह भिक्षु या भिक्षुणी, दिन में या रात में, अकेले या परिषद् में, सोते या जागते; अग्नि, अंगारे, मुर्मुर्, अर्चि, ज्वाला, अलात, शुद्ध अग्नि या उल्का को, उत्सिंचन, घट्टन, उज्ज्वालन या प्रज्वालन स्वयं न करे, न दूसरों कराए और न करने वाले का अनुमोदन करे;

भंते ! यावज्जीवन के लिए, तीन करण, तीन योग से मैं मन से, वचन से और काया से अग्निसमारम्भ नहीं करूंगा, न कराऊंगा और न करने वाले का अनुमोदन करूंगा । भंते ! मैं उस से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और उस आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

सूत्र - ४४

संयत, विरत, प्रतिहत और प्रत्याख्यातपापकर्मा, वह भिक्षु अथवा भिक्षुणी; दिन में या रात में, अकेले या परिषद् में, सोते या जागते, चामर, पंखे, ताड़ के पत्तों से बने हुए पंखे, पत्र, शाखा, शाखा के टूटे हुए खण्ड, मोरपिच्छी वस्त्र के पल्ले से, अपने हाथ से या मुँह से, अपने शरीर को अथवा किसी बाह्य पुद्गल को (स्वयं) फूंक न दे, हवा न करे, दूसरों से न ही कराए तथा हवा करने वाले का अनुमोदन न करे।

भंते ! यावज्जीवन के लिए तीन करण, तीन योग से पूर्वोक्त वायुकाय-विराधना मन से, वचन से और काया से, स्वयं नहीं करूंगा, न दूसरों से कराऊंगा और करने वाले अन्य किसी का भी अनुमोदन नहीं करूंगा । भंते ! मैं उस से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और उस आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

सूत्र - ४५

संयत, विरत, प्रतिहत और प्रत्याख्यातपापकर्मा, वह भिक्षु या भिक्षुणी; दिन में अथवा रात में, अकेले या परिषद् में हो, सोया हो या जागता हो; बीजों, बीजों पर रखे पदार्थों, फूटे अंकुरों, अंकुरों पर हुए पदार्थों पर, पत्रसंयुक्त अंकुरित वनस्पतियों, पत्रयुक्त अंकुरित वनस्पति पर रखे हुए पदार्थों, हरित वनस्पतियों, हरित वनस्पति पर रखे हुए पदार्थों, छिन्न वनस्पतियों, छिन्न-वनस्पति पर रखे पदार्थों, सचित्त कोल तथा संसर्ग से युक्त काष्ठ आदि पर, न चले, न खड़ा रहे, न बैठे और न करवट बदले; दूसरों को न चलाए, न खड़ा करे, न बिठाए और न करवट बदलाए, न उन चलने वाले आदि किसी का भी अनुमोदन करे ।

भंते ! यावज्जीवन के लिए मैं तीन करण, तीन योग से, मन से, वचन से और काया से वनस्पतिकाय की विराधना नहीं करूंगा; न कराऊंगा और न ही करने वाले अन्य किसी का भी अनुमोदन करूंगा । भंते ! मैं उस से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

सूत्र - ४६

जो संयत है, विरत है, जिसने पाप-कर्मों का निरोध और प्रत्याख्यान कर दिया है, वह भिक्षु या भिक्षुणी, दिन में या रात में, अकेले या परिषद् में हो, सोते या जागते; कीट, पतंगे, कुंथु अथवा पिपीलिका हो हाथ, पैर, भुजा, उरु, उदर, सिर, वस्त्र, पात्र, रजोहरण, गुच्छक, उंडग, दण्डक, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक अथवा इसी प्रकार के अन्य किसी उपकरण पर चढ़ जाने के बाद यतना-पूर्वक प्रतिलेखन, प्रमार्जन कर एकान्त स्थान में ले जाकर रख दे उनको एकत्रित करके घात न पहुँचाए।

सूत्र - ४७-५२

अयतनापूर्वक-१-गमन करनेवाला । अयतनापूर्वक - २ -खड़ा होनेवाला - ३ -बैठनेवाला - ४ -सोने वाला - ५ -भोजन करनेवाला - ६ -बोलनेवाला, त्रस और स्थावर जीवों हिंसा करता है । उससे पापकर्म का बन्ध होता है, जो उसके लिए कटु फल वाला होता है ।

सूत्र - ५३-५४

साधु या साध्वी कैसे चले ? कैसे खडे हो ? कैसे बैठे ? कैसे सोए ? कैसे खाए और बोले ?, जिससे कि पापकर्म का बन्धन हो ? यतनापूर्वक चले, यतनापूर्वक खड़ा हो, यतनापूर्वक बैठे, यतनापूर्वक सोए, यतनापूर्वक खाए और यतनापूर्वक बोले, (तो वह) पापकर्म का बन्ध नहीं करता ।

सूत्र - ५५

जो सर्वभूतात्मभूत है, सब जीवों को सम्यग्दृष्टि से देखता है, तथा आश्रव का निरोध कर चुका है और दान्त है, उसके पापकर्म का बन्ध नहीं होता ।

सूत्र - ५६

'पहले ज्ञान और फिर दया है' - इस प्रकार से सभी संयमी (संयम में) स्थित होते हैं ।

अज्ञानी क्या करेगा ? वह श्रेय और पाप को क्या जानेगा ?

सूत्र - ५७

श्रवण करके ही कल्याण को जानता है, पाप को जानता है। कल्याण और पाप-दोनों को जानता है, उनमें जो श्रेय है, उसका आचरण करता है ।

सूत्र - ५८

जो जीवों को भी नहीं जानता, अजीवों को भी नहीं जानता, जीव और अजीव दोनों को नहीं जाननेवाला वह संयम को कैसे जानेगा ?

सूत्र - ५९-७१

जो जीवों को, अजीवों को और दोनों को विशेषरूप से जानने वाला हो तो संयम को जानेगा । समस्त जीवों की बहुविध गतियों को जानता है । तब पुण्य और पाप तथा बन्ध और मोक्ष को भी जानता है । तब दिव्य और मानवीय भोग से विरक्त होता है । विरक्त होकर आभ्यन्तर और बाह्य संयोग का परित्याग कर देता है । त्याग करता है तब वह मुण्ड हो कर अनगारधर्म में प्रव्रजित होता है । प्रव्रजित हो जाता है, तब उत्कृष्ट-अनुत्तरधर्म का स्पर्श करता है । स्पर्श करता है, तब अबोधिरूप पाप द्वारा किये हुए कर्मरज को झाड़ देता है । कर्मरज को झाड़ता है, तब सर्वत्र व्यापी ज्ञान और दर्शन को प्राप्त करता है ।

तब वह जिन और केवली होकर लोक और अलोक को जानता है । लोक-अलोक को जान लेता है; तब योगों का निरोध करके शैलेशी अवस्था को प्राप्त कर लेता है । तब वह कर्मों का क्षय करके रज-मुक्त बन, सिद्धि

को प्राप्त करता है। सिद्धि को प्राप्त कर के, वह लोक के मस्तक पर स्थित होकर शाश्वत सिद्ध हो जाता है।

सूत्र - ७२

जो श्रमण सुख का रसिक है, साता के लिए आकुल रहता है, अत्यन्त सोने वाला है, प्रचुर जल से बार-बार हाथ-पैर आदि को धोनेवाला है, ऐसे श्रमण को सुगति दुर्लभ है।

सूत्र - ७३

जो श्रमण तपोगुण में प्रधान है, ऋजुमति है, क्षान्ति एवं संयम में रत है, तथा परीषहों को जीतने वाला है; ऐसे श्रमण को सुगति सुलभ है।

सूत्र - ७४

भले ही वे पिछली वय में प्रव्रजित हुए हों किन्तु जिन्हें तप, संयम, क्षान्ति एवं ब्रह्मचर्य प्रिय हैं, वे शीघ्र ही देवभवनों में जाते हैं।

सूत्र - ७५

इस प्रकार दुर्लभ श्रमणत्व को पाकर सम्यक् दृष्टि और सदा यतनाशील साधु या साध्वी इस षड्जीवनिका की मन, वचन और क्रिया से विराधना न करे – ऐसा मैं कहता हूँ।

अध्ययन-४ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवादपूर्ण

अध्ययन-५-पिण्डैषणा**अध्ययन-५ – पिण्डैषणा उद्देशक - १****सूत्र - ७६**

भिक्षाकाल प्राप्त होने पर असम्भ्रान्त और अमूर्च्छित होकर इस क्रम-योग से भक्त-पान की गवेषणा करे ।

सूत्र - ७७

ग्राम या नगर में गोचराग्र के लिए प्रस्थित मुनि अनुद्विग्न और अव्याक्षिप्त चित्त से धीमे-धीमे चले ।

सूत्र - ७८

आगे युगप्रमाण पृथ्वी को देखता हुआ तथा बीज, हरियाली, प्राणी, सचित्त जल और सचित्त मिट्टी को टालता हुआ चले ।

सूत्र - ७९

अन्य मार्ग के होने पर गड्ढे आदि, ऊबडखाबड़ भूभाग, टूठ और पंकिल मार्ग को छोड़ दे; तथा संक्रम के ऊपर से न जाए ।

सूत्र - ८०

उन गड्ढे आदि से गिरता हुआ या फिसलता हुआ त्रस या स्थावर जीवों की हिंसा कर सकता है ।

सूत्र - ८१

इसलिए सुसमाहित संयमी साधु अन्य मार्ग के होते हुए उस मार्ग से न जाए । यदि दूसरा मार्ग न हो तो यतनापूर्वक उस मार्ग से जाए ।

सूत्र - ८२

संयमी साधु अंगार, राख, भूसे और गोबर पर सचित रज से युक्त पैरों से उन्हें अतिक्रम कर न जाए ।

सूत्र - ८३

वर्षा बरस रही हो, कुहरा पड़ रहा हो, महावात चल रहा हो, और मार्ग में तिर्यञ्च संपातिम जीव उड़ रहे हों तो भिक्षाचरी के लिए न जाए ।

सूत्र - ८४

ब्रह्मचर्य का वशवर्ती श्रमण वेश्यावाड़े के निकट न जाए; क्योंकि दमितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी साधक के चित्त में भी असमाधि उत्पन्न हो सकती है ।

सूत्र - ८५

ऐसे कुस्थान में बार-बार जाने वाले मुनि को उन वातावरण के संसर्ग से व्रतों की क्षति और साधुता में सन्देह हो सकता है ।

सूत्र - ८६

इसलिए इसे दुर्गतिवर्द्धक दोष जान कर एकान्त के आश्रव में रहने वाला मुनि वेश्यावाड़ के पास न जाए ।

सूत्र - ८७

मार्ग में कुत्ता, नवप्रसूता गाय, उन्मत्त बल, अश्व और गज तथा बालकों का क्रीड़ास्थान, कलह और युद्ध के स्थान को दूर से ही छोड़ कर गमन करे ।

सूत्र - ८८

मुनि उन्नत मुंह, अवनत हो कर, हर्षित या आकुल होकर न चले, इन्द्रियों के विषय को दमन करके चले।

सूत्र - ८९

उच्च-नीच कुल में गोचरी के लिए मुनि सदैव जल्दी-जल्दी तथा हँसी-मजाक करता हुआ और बोलता हुआ न चले।

सूत्र - ९०

गोचरी के लिए जाता हुआ झरोखा, थिगल द्वार, संधि जलगृह, तथा शंका उत्पन्न करनेवाले अन्य स्थानों को भी छोड़ दे।

सूत्र - ९१

राजा के, गृहपतियों के तथा आरक्षिकों के रहस्य के उस स्थान को दूर से ही छोड़ दे, जहां जाने से संक्लेश पैदा हो।

सूत्र - ९२

साधु-साध्वी निन्दित कुल, मामकगृह और अप्रीतिकर कुल में न प्रवेशे, किन्तु प्रीतिकर कुल में प्रवेश करे।

सूत्र - ९३

साधु-साध्वी, आज्ञा लिये बिना पर्दा तथा वस्त्रादि से ढँके हुए द्वार को स्वयं न खोले तथा कपाट को भी न उघाड़े।

सूत्र - ९४

भिक्षा के लिए प्रविष्ट होने वाला साधु मल-मूत्र की बाधा न रखे। यदि बाधा हो जाए तो प्रासुक स्थान देख कर, गृहस्थ की अनुज्ञा लेकर मल-मूत्र का उत्सर्ग करे।

सूत्र - ९५-९६

निचे द्वार वाले घोर अन्धकारयुक्त कोठे, जिस कोठे में फूल, बीज आदि बिखरे हुए हों, तथा जो कोष्ठक तत्काल लीपा हुआ, एवं गीला देखे तो उस में प्रवेश न करे।

सूत्र - ९७

संयमी मुनि, भेड़, बालक, कुत्ते या बछड़े को लांघ कर अथवा हटा कर कोठे में प्रवेश न करे।

सूत्र - ९८-९९

गोचरी के लिए घर में प्रविष्ट भिक्षु आसक्तिपूर्वक न देखे; अतिदूर न देखे, उत्फुल्ल दृष्टि से न देखे; तथा भिक्षा प्राप्त न होने पर बिना कुछ बोले लौट जाए। अतिभूमि न जाए, कुल की मर्यादित भूमि को जान कर मित भूमि तक ही जाए।

सूत्र - १००

विचक्षण साधु वहाँ ही उचित भूभाग प्रतिलेखन करे, स्थान और शौच के स्थान की ओर दृष्टिपात न करे।

सूत्र - १०१-१०२

सर्वेन्द्रिय-समाहित भिक्षु (सचित्त) पानी और मिट्टी लाने के मार्ग तथा बीजों और हरित (हरी) वनस्पतियों को वर्जित करके खड़ा रहे।

वहाँ खड़े हुए उस साधु को देने के लिए कोई गृहस्थ पान और भोजन लाए तो उसमें से अकल्पनीय को

ग्रहण न करे, कल्पनीय ही ग्रहण करे ।

सूत्र - १०३

यदि साधु या साध्वी के पास भोजन लाते हुए कोई-उसे नीचे गिराए तो साधु उस आहार का निषेध कर दे कि इस प्रकार का आहार मेरे लिए कल्पनीय नहीं है ।

सूत्र - १०४

प्राणी, बीज और हरियाली को कुचलता हुए आहार लाने वाले को असंयमकारि जान कर उससे न ले ।

सूत्र - १०५-१०६

इसी प्रकार एक बर्तन में से दूसरे बर्तन में डालकर, सचित्त वस्तु पर रखकर, सचित्त वस्तु का स्पर्श करके तथा सचित्त जल को हिला कर, अवगाहन कर, चलित कर, पान और भोजन लाए तो मुनि निषेध कर दे कि इस प्रकार का आहार मेरे लिए ग्रहण करना कल्प्य नहीं है ।

सूत्र - १०७

पुराकर्म-कृत (साधु को आहार देने से पूर्व ही सचित्त जल से धोये हुए) हाथ से, कड़छी से अथवा बर्तन से (मुनि को भिक्षा) देती हुई महिला को मुनि निषेध कर दे कि इस प्रकार का आहार मेरे लिए कल्पनीय (ग्रहण करने योग्य) नहीं है । (अर्थात् - मैं ऐसा दोषयुक्त आहार नहीं ले सकता ।)

सूत्र - १०८

यदि हाथ या कड़छी भीगे हुए हो, सचित्त जल से स्निग्ध हो, सचित्त रज, मिट्टी, खार, हरताल, हिंगलोक, मनःशील, अंजन, नमक तथा -

सूत्र - १०९

गेरु, पीली मट्टी, सफेद मट्टी, फटकड़ी, अनाज का भुसा तुरंत का पीसा हुआ आटा, फल या टुकड़ा इत्यादि से लिप्त हो तो मुनि को नहीं कल्पता ।

सूत्र - ११०

जहाँ पश्चात्कर्म की संभावना हो, वहाँ असंसृष्ट हाथ, कड़छी अथवा बर्तन से दिये जाने वाले आहार को ग्रहण करने की इच्छा न करे ।

सूत्र - १११

(किन्तु) संसृष्ट हाथ से, कड़छी से या बर्तन से दिया जाने वाला आहार यदि एषणीय हो तो मुनि लेवे ।

सूत्र - ११२-११३

(जहाँ) दो स्वामी या उपभोक्ता हों और उनमें से एक निमंत्रित करे, तो मुनि उस दिये जाने वाले आहार को ग्रहण करने की इच्छा न करे । वह दूसरे के अभिप्राय को देखे ! यदि उसे देना प्रिय लगता हो तो यदि वह एषणीय हो तो ग्रहण कर ले ।

सूत्र - ११४

गर्भवती स्त्री के लिए तैयार किये विविध पान और भोजन यदि उसके उपभोग में आ रहे हों, तो मुनि ग्रहण न करे, किन्तु यदि उसके खाने से बचे हुए हों तो उन्हें ग्रहण कर ले ।

सूत्र - ११५-११८

कदाचित् कालमासवती गर्भवती महिला खड़ी हो और श्रमण के लिए बैठे; अथवा बैठी हो और खड़ी हो

जाए तो, स्तनपान कराती हुई महिला यदि बालक को रोता छोड़ कर भक्त-पान लाए तो वह भक्त-पान संयमियों के लिए अकल्पनीय होता है। अतः उसे निषेध करे कि इस प्रकार का आहार मेरे लिए ग्रहण करने योग्य नहीं है।

सूत्र - ११९

जिस भक्त-पान के कल्पनीय या अकल्पनीय होने में शंका हो, उसे देती हुई महिला को मुनि निषेध कर दे कि मेरे लिए यह आहार कल्पनीय नहीं है।

सूत्र - १२०-१२१

पानी के घड़े, पत्थर की चक्की, पीठ, शिलापुर, मिट्टी आदि के लेप, लाख आदि श्लेषद्रव्यों या किसी अन्य द्रव्य से-पिहित बर्तन का श्रमण के लिए मुंह खोल कर आहार देती हुई महिला को मुनि निषेध कर दे कि मेरे लिए यह आहार ग्रहण करने योग्य नहीं है।

सूत्र - १२२-१२९

यदि मुनि यह जान जाए या सुन ले कि यह अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य दानार्थ, पुण्यार्थ, वनीपकों के लिए या श्रमणों के निमित्त बनाया गया है तो वह भक्त-पान संयमियों के लिए अकल्पनीय होता है। (इसलिए) भिक्षु उस को निषेध कर दे कि इस प्रकार का आहार मेरे लिए ग्राह्य नहीं है।

सूत्र - १३०-१३१

साधु या साध्वी औद्देशिक, क्रीतकृत, पूतिकर्म, आहत, अध्यवतर, प्रामित्य और मिश्रजात, आहार न ले। पूर्वोक्त आहारादि के विषय में शंका होने पर उस का उद्गम पूछे कि यह किसके लिए किसने बनाया है? फिर निःशंकित और शुद्ध जान कर आहार ग्रहण करे।

सूत्र - १३२-१३७

यदि अशन, पानक, खाद्य और स्वाद्य, पुष्पों से और हरित दूर्वादिकों से उन्मिश्र हो, सचित्त पानी पर, अथवा उत्तिंग और पनक पर निक्षिप्त हो, अग्नि पर निक्षिप्त या स्पर्शीत हो दे, तो वह भक्त-पान संयमियों के लिए अकल्पनीय होता है, इसलिए मुनि निषेध कर दे कि इस प्रकार का आहार मेरे लिए ग्रहण करने योग्य नहीं है।

सूत्र - १३८-१३९

चूले में से इंधन निकालकर अग्नि प्रज्वलित करके या तेज करके या अग्नि को ठंडा करके, अन्न का उभार देखकर उसमें से कुछ कम करके या जल डालके या अग्नि से नीचे उतारकर देवें तो वह भोजनपान संयमी के लिए अकल्पनीय है। तब भिक्षु कहता है कि यह भिक्षा मुझे कल्प्य नहीं है।

सूत्र - १४०-१४१

कभी काठ, शिला या ईंट संक्रमण के लिए रखे हों और वे चलाचल हों, तो सर्वेन्द्रिय-समाहित भिक्षु उन पर से होकर न जाए। इसी प्रकार प्रकाशरहित और पोले मार्ग से भी न जाए। भगवान् ने उसमें असंयम देखा है।

सूत्र - १४२-१४४

यदि आहारदात्री श्रमण के लिए निसैनी, फलक, या पीठ को ऊंचा करके मंच, कीलक अथवा प्रासाद पर चढ़े और वहाँ से भक्त-पान लाए तो उसे ग्रहण न करे; क्योंकि निसैनी आदि द्वारा चढ़ती हुई वह गिर सकती है, उसके हाथ-पैर टूट सकते हैं। पृथ्वी के तथा पृथ्वी के आश्रित त्रस जीवों की हिंसा हो सकती है। अतः ऐसे महादोषों को जान कर संयमी महर्षि मालापहत भिक्षा नहीं ग्रहण करते।

सूत्र - १४५

(साधु-साध्वी) अपक्व कन्द, मूल, प्रलम्ब, छिला हुआ पत्ती का शाक, घीया आदि अदरक ग्रहण न करे।

सूत्र - १४६-१४७

इसी प्रकार जौ आदि सत्तु का चूर्ण, बेर का चूर्ण, तिलपपड़ी, गीला गुड़, पूआ तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुएँ, जो बहुत समय से खुली हुई हों और रज से चारों ओर स्पृष्ट हों, तो साधु निषेध कर दे कि मैं इस प्रकार का आहार ग्रहण नहीं करता ।

सूत्र - १४८-१४९

बहुत अस्थियों वाला फल, बहुत-से कांटों वाला फल, आस्थिक, तेन्दु, बेल, गन्ने के टुकड़े और सेमली की फली, जिनमें खाद्य अंश कम हो और त्याज्य अंश बहुत अधिक हो, उन सब को निषेध कर दे कि इस प्रकार मेरे लिए ग्रहण करना योग्य नहीं है ।

सूत्र - १५०

इसी प्रकार उच्चावच पानी अथवा गुड़ के घड़े का, आटे का, चावल का धोवन, इनमें से यदि कोई तत्काल का धोया हुआ हो, तो मुनि उसे ग्रहण न करे ।

सूत्र - १५१-१५६

यदि अपनी मति और दृष्टि से, पूछ कर अथवा सुन कर जान ले कि यह बहुत देर का धोया हुआ है तथा निःशंकित हो जाए तो जीवरहित और परिणत जान कर संयमी मुनि उसे ग्रहण करे ।

यदि यह जल मेरे लिए उपयोगी होगा या नहीं ? इस प्रकार की शंका हो जाए, तो फिर उसे चख कर निश्चय करे । 'चखने के लिए थोड़ा-सा यह पानी मेरे हाथ में दो ।' यह पानी बहुत ही खट्टा, दुर्गन्धयुक्त है और मेरी तृष्णा बुझाने में असमर्थ होने से मेरे लिए उपयोगी न हो तो मुझे ग्राह्य नहीं ।

यदि वह धोवन-पानी अपनी अनिच्छा से अथवा अन्यमनस्कता से ग्रहण कर लिया गया हो तो, न स्वयं पीए और न ही किसी अन्य साधु को पीने को दे । वह एकान्त में जाए, वहाँ अचित्त भूमि को देख करके यतनापूर्वक उसे प्रतिष्ठापित कर दे पश्चात् स्थान में आकर वह प्रतिक्रमण करे ।

सूत्र - १५७-१६१

गोचराग्र के लिए गया हुआ भिक्षु कदाचित् आहार करना चाहे तो वह मेघावी मुनि प्रासुक कोष्ठक या भित्तिमूल का अवलोकन कर, अनुज्ञा लेकर किसी आच्छादित एवं चारों ओर से संवृत स्थल में अपने हाथ को भलीभाँति साफ करके वहाँ भोजन करे ।

उस स्थान में भोजन करते हुए आहार में गुठली, कांटा, तिनका, लकड़ी का टुकड़ा, कंकड़ या अन्य कोई वैसी वस्तु निकले तो उसे निकाल कर न फेंके, न ही मुंह से थूक कर गिराए; किन्तु हाथ में लेकर एकान्त चला जाए और एकान्त में जाकर अचित्त भूमि देखकर यतनापूर्वक उसे परिष्ठापित कर दे । परिष्ठापन करने के बाद (अपने स्थान में आकर) प्रतिक्रमण करे ।

सूत्र - १६२-१६९

कदाचित् भिक्षु बसति में आकर भोजन करना चाहे तो पिण्डपात सहित आकर भोजन भूमि प्रतिलेखन कर ले । विनयपूर्वक गुरुदेव के समीप आए और ईर्यापथिक प्रतिक्रमण करे । जाने-आने में और भक्तपान लेने में (लगे) समस्त अतिचारों का क्रमशः उपयोगपूर्वक चिन्तन कर ऋजुप्रज्ञ और अनुद्विग्न संयमी अव्याक्षिप्त चित्त से गुरु के पास आलोचना करे और जिस प्रकार से भिक्षा ली हो, उसी प्रकार से गुरु से निवेदन करे ।

यदि आलोचना सम्यक् प्रकार से न हुई हो, अथवा जो पहले-पीछे की हो, तो उसका पुनः प्रतिक्रमण करे, कायोत्सर्गस्थ होकर यह चिन्तन करे - अहो ! जिनेन्द्र भगवन्तों ने साधुओं को मोक्षसाधना के हेतुभूत संयमी

शरीर-धारण करने के लिए निरवद्य वृत्ति का उपदेश दिया है। नमस्कार-सूत्र के द्वारा पूर्ण करके जिनसंस्तव करे, फिर स्वाध्याय का प्रारम्भ करे, क्षणभर विश्राम ले, कर्म-निर्जरा के लाभ का अभिलाषी मुनि इस हितकर अर्थ का चिन्तन करे - "यदि कोई भी साधु मुझ पर अनुग्रह करें तो मैं संसार-समुद्र से पार हो जाऊं।

सूत्र - १७०-१७४

वह प्रीतिभाव से साधुओं को यथाक्रम से निमंत्रण करे, यदि उन में से कोई भोजन करना चाहें तो उनके साथ भोजन करे। यदि कोई आहार लेना न चाहे, तो वह अकेला ही प्रकाशयुक्त पात्र में, नीचे न गिरता हुआ यतनापूर्वक भोजन करे। अन्य के लिए बना हुआ, विधि से उपलब्ध जो तिक्त, कडुआ, कसैला, अम्ल, मधुर या लवण हो, संयमी साधु उसे मधु-धृत की तरह सन्तोष के साथ खाए।

मुधाजीवी भिक्षु प्राप्त किया हुआ आहार अरस हो या सरस, व्यञ्जनादि युक्त हो अथवा रहित, आर्द्र हो, या शुष्क, बेर के चून का भोजन हो अथवा कुलथ या उड़द के बाकले का, उसकी अवहेलना न करे, किन्तु मुधाजीवी साधु, मुघालब्ध एवं प्रासुक आहार का, अल्प हो या बहुत; दोषों को छोड़ कर समभावपूर्वक सेवन करे

सूत्र - १७५

मुधादायी दुर्लभ हैं और मुधाजीवी भी दुर्लभ हैं। मुधादायी और मुधाजीवी, दोनों सुगति को प्राप्त होते हैं। - ऐसा कहता हूँ।

अध्ययन-५ - उद्देशक - २

सूत्र - १७६

सम्यक् यत्नवान् साधु लेपमात्र-पर्यन्त पात्र को अंगुलि से पोंछ कर सुगन्ध हो या दुर्गन्धयुक्त, सब खा ले।

सूत्र - १७७-१७८

उपाश्रय में या स्वाध्यायभूमि में बैठा हुआ, अथवा गौचरी के लिए गया हुआ मुनि अपर्याप्त खाद्य-पदार्थ खाकर यदि उस से निर्वाह न हो सके तो कारण उत्पन्न होने पर पूर्वोक्त विधि से और उत्तर विधि से भक्त-पान की गवेषणा करे।

सूत्र - १७९-१८१

भिक्षु भिक्षा काल में निकले और समय पर ही वापस लौटे अकाल को वर्ज कर जो कार्य जिस समय उचित हो, उसे उसी समय करे। हे मुनि ! तुम अकाल में जाते हो, काल का प्रतिलेख नहीं करते।

भिक्षा न मिलने पर तुम अपने को क्षुब्ध करते हो और सन्निवेश की निन्दा करते हो।

भिक्षु समय होने पर भिक्षाटन और पुरुषार्थ करे।

भिक्षा प्राप्त नहीं हुई, इसका शोक न करे किन्तु तप हो गया, ऐसा विचार कर क्षुधा परीषह सहन करे।

सूत्र - १८२

इसी प्रकार भोजनार्थ एकत्रित हुए नाना प्रकार के प्राणी दीखें तो वह उनके सम्मुख न जाए, किन्तु यतनापूर्वक गमन करे।

सूत्र - १८३-१८८

गौचरी के लिये गया हुआ संयमी कहीं भी न बैठे और न खड़ा रह कर भी धर्म-कथा का प्रबन्ध करे, अर्गला, परिघ, द्वार एवं कपाट का सहारा लेकर खड़ा न रहे, भोजन अथवा पानी के लिए आते हुए या गये हुए श्रमण, ब्राह्मण, कृपण अथवा वनीपक को लांघ कर प्रवेश न करे और न आँखों के सामने खड़ा रहे। किन्तु एकान्त में जा कर वहाँ खड़ा हो जाए।

उन भिक्षाचार्यों को लांघ कर घर में प्रवेश करने पर उस बनीपक, दाता अथवा दोनों को अप्रीति उत्पन्न हो सकती है, अथवा प्रवचन की लघुता होती है। किन्तु गृहस्वामी द्वारा उन भिक्षाचारों को देने का निषेध करने पर अथवा दे देने पर तथा वहाँ से उन याचकों के हट जाने पर संयमी साधु उस घर में प्रवेश करे।

सूत्र - १८९-१९२

उत्पल, पद्म, कुमुद या मालती अथवा अन्य किसी सचित्त पुष्प का छेदन करके, सम्मर्दन कर भिक्षा देने लगे तो वह भक्त-पान संमयी साधु के लिए अकल्पनीय है। इसलिए मुनि निषेध कर दे कि इस प्रकार का आहार मेरे लिए अग्राह्य है।

सूत्र - १९३-१९५

अनिर्वृत कमलकन्द, पलाशकन्द, कुमुदनाल, उत्पलनाल, कमल के तन्तु, सरसों की नाल, अपक्व इक्षुखण्ड, वृक्ष, तृण और दूसरी हरी वनस्पति का कच्चा नया प्रवाल -

जिसके बीज न पके हों, ऐसी नई अथवा एक बार भूनी हुई कच्ची फली को साधु निषेध कर दे कि इस प्रकार का आहार मैं ग्रहण नहीं करता।

सूत्र - १९६-१९९

इसी प्रकार बिना उबाला हुआ बेर, वंश-शरीर, काश्यपनालिका तथा अपक्व तिलपपड़ी और कदम्ब का फल चाहिए। चावलों का पिष्ट, विकृत धोवन, निर्वृत जल, तिलपिष्ट, पोड़-साग और सरसों की खली, कपित्थ, बिजौरा, मूला और मूले के कन्द के टुकड़े, मन से भी इच्छा न करे। फलों का चूर्ण, बीजों का चूर्ण, बिभीतक तथा प्रियालफल, इन्हें अपक्व जान कर छोड़ दे।

सूत्र - २००

भिक्षु समुदान भिक्षाचर्या करे। (वह) उच्च और नीच सभी कुलों में जाए, नीचकुल को छोड़ कर उच्चकुल में न जाए।

सूत्र - २०१

पण्डित साधु दीनता से रहित होकर भिक्षा की एषणा करे। भिक्षा न मिले तो विषाद न करे। सरस भोजन में अमूर्च्छित रहे। मात्रा को जानने वाला मुनि एषणा में रत रहे।

सूत्र - २०२

गृहस्थ (पर) के घर में अनेक प्रकार का प्रचुर खाद्य तथा स्वाद्य आहार होता है; किन्तु न देने पर पण्डित मुनि कोप न करे; परन्तु ऐसा विचार करे कि यह गृहस्थ है, दे या न दे, इसकी इच्छा।

सूत्र - २०३

संयमी साधु प्रत्यक्ष दीखते हुए भी शयन, आसन, वस्त्र, भक्त और पान, न देने वाले पर क्रोध न करे।

सूत्र - २०४

स्त्री या पुरुष, बालक या वृद्ध वन्दना कर रहा हो, तो उससे किसी प्रकार की याचना न करे तथा आहार न दे तो उसे कठोर वचन भी न कहे।

सूत्र - २०५

जो वन्दना न करे, उस पर कोप न करे, वन्दना करे तो उत्कर्ष न लाए - इस प्रकार भगवदाज्ञा का अन्वेषण करने वाले मुनि का श्रामण्य अखण्ड रहता है।

सूत्र - २०६-२०७

कदाचित् कोई साधु सरस आहार प्राप्त करके इस लोभ से छिपा लेता है कि मुझे मिला हुआ यह आहार गुरु को दिखाया गया तो वे देख कर स्वयं ले लें, मुझे न दें; ऐसा अपने स्वार्थ को ही बड़ा मानने वाला स्वादलोलुप बहुत पाप करता है और वह सन्तोषभाव रहित हो जाता है। निर्वाण को नहीं प्राप्त कर पाता।

सूत्र - २०८-२१०

कदाचित् विविध प्रकार के पान और भोजन प्राप्त कर अच्छा-अच्छा खा जाता है और विवर्ण एवं नीरस को ले आता है। (इस विचार से कि) ये श्रमण जानें कि यह मुनि बड़ा मोक्षार्थी है, सन्तुष्ट है, प्रान्त आहार सेवन करता है। रूक्षवृत्ति एवं जैसे-तैसे आहार से सन्तोष करने वाला है।

ऐसा पूजार्थी, यश-कीर्ति पाने का अभिलाषी तथा मान-सम्मान की कामना करने वाला साधु बहुत पापकर्मों का उपार्जन करता है और मायाशल्य का आचरण करता है।

सूत्र - २११

अपने संयम की सुरक्षा करता हुआ भिक्षु सुरा, मेरक या अन्य किसी भी प्रकार का मादक रस आत्मसाक्षी से न पीए।

सूत्र - २१२-२१६

मुझे कोई जानता देखता नहीं है - यों विचार कर एकान्त में अकेला मद्य पीता है, उसके दोषों को देखो और मायाचार को मुझ से सुनो। उस भिक्षु की आसक्ति, माया-मृषा, अपयश, अतृप्ति और सतत असाधुता बढ़ जाती है। जैसे चोर सदा उद्विग्न रहता है, वैसे ही वह दुर्मति साधु अपने दुष्कर्मों से सदा उद्विग्न रहता है। ऐसा मद्यपायी मुनि मरणान्त समय में भी संवर की आराधना नहीं कर पाता।

न तो वह आचार्य की आराधना कर पाता है और न श्रमणों की। गृहस्थ भी उसे वैसा दुश्चरित्र जानते हैं, इसलिए उसकी निन्दा करते हैं। इस प्रकार अगुणों को ही अहर्निश प्रेक्षण करने वाला और गुणों का त्याग करनेवाला उस प्रकार का साधु मरणान्तकाल में भी संवर की आराधना नहीं कर पाता।

सूत्र - २१७-२२०

जो मेधावी और तपस्वी साधु तपश्चरण करता है, प्रणीत रस से युक्त पदार्थों का त्याग करता है, जो मद्य और प्रमाद से विरत है, अहंकारातीत है उसके अनेक साधुओं द्वारा पूजित विपुल एवं अर्थसंयुक्त कल्याण को स्वयं देखो और मैं उसके गुणों का कीर्तन (गुणानुवाद) करूंगा, उसे मुझ से सुनो।

इस प्रकार गुणों की प्रेक्षा करने वाला और अगुणों का त्यागी शुद्धाचारी साधु मरणान्त काल में भी संवर की आराधना करता है। वह आचार्य की आराधना करता है और श्रमणों की भी। गृहस्थ भी उसे उस प्रकार का शुद्धाचारी जानते हैं, इसलिए उसकी पूजा करते हैं।

सूत्र - २२१-२२४

(किन्तु) जो तप का, वचन का, रूप का, आचार तथा भाव का चोर है, वह किल्बिषिक देवत्व के योग्य कर्म करता है। देवत्व प्राप्त करके भी किल्बिषिक देव के रूप में उत्पन्न हुआ वह वहाँ यह नहीं जानता कि यह मेरे किस कर्म का फल है? वहाँ से च्युत हो कर मनुष्यभव में एडमूकता अथवा नरक या तिर्यञ्चयोनि को प्राप्त करेगा जहाँ उसे बोधि अत्यन्त दुर्लभ है।

इस दोष को जान-देख कर ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर ने कहा कि मेधावी मुनि अणुमात्र भी मायामृषा का सेवन न करे।

सूत्र - २२५

इस प्रकार संयमी एवं प्रबुद्ध गुरुओं के पास भिक्षासम्बन्धी एषणा की विशुद्धि सीख कर इन्द्रियों को सुप्रणिहित रखते वाला, तीव्रसंयमी एवं गुणवान् होकर भिक्षु संयम में विचरण करे । - ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-५ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवादपूर्ण

अध्ययन - ६ - महाचारकथा

सूत्र - २२६-२२७

ज्ञान और दर्शन से सम्पन्न, संयम और तप में रत, आगम-सम्पदा से युक्त गणिवर्य-आचार्य को उद्यान में समवसृत देखकर राजा और राजमंत्री, ब्राह्मण और क्षत्रिय निश्चलात्मा होकर पूछते हैं -

हे भगवान् ! आप का आचार - गोचर कैसा है ?

सूत्र - २२८-२२९

तब वे शान्त, दान्त, सर्वप्राणियों के लिए सुखावह, ग्रहण और आसेवन, शिक्षाओं से समायुक्त और परम विचक्षण गणी उन्हें कहते हैं - कि धर्म के प्रयोजनभूत मोक्ष की कामना वाले निर्ग्रन्थों के भीम, दुरधिष्ठित और सकल आचार-गोचर मुझसे सुनो ।

सूत्र - २३०-२३२

जो निर्ग्रन्थाचार लोक में अत्यन्त दुश्चर है, इस प्रकार के श्रेष्ठ आचार अन्यत्र कहीं नहीं है | सर्वोच्च स्थान के भागी साधुओं का ऐसा आचार अन्य मत में न अतीत में था, न ही भविष्य में होगा । बालक हो या वृद्ध, अस्वस्थ हो या स्वस्थ, को जिन गुणों का पालन अखण्ड और अस्फुटित रूप से करना चाहिए, वे गुण जिस प्रकार हैं, उसी प्रकार मुझ से सुनो । उसके अठारह स्थान हैं । जो अज्ञ साधु इन अठारह स्थानों में से किसी एक का भी विराधन करता है, वह निर्ग्रन्थता से भ्रष्ट हो जाता है ।

सूत्र - २३३-२३५

प्रथम स्थान अहिंसा का है, अहिंसा को सूक्ष्मरूप से देखी है । सर्वजीवों के प्रति संयम रखना अहिंसा है । लोक में जितने भी त्रस अथवा स्थावर प्राणी है; साधु या साध्वी, जानते या अजानते, उनका हनन न करे और न ही कराए; अनुमोदना भी न करे ।

सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना नहीं । इसलिए निर्ग्रन्थ साधु प्राणिवध को घोर जानकर परित्याग करते हैं

सूत्र - २३६-२३७

अपने लिए या दूसरों के लिए, क्रोध से या भय से हिंसाकारक और असत्य न बोले, न ही बुलवाए और न अनुमोदन करे । लोक में समस्त साधुओं द्वारा मृषावाद गर्हित है और वह प्राणियों के लिए अविश्वसनीय है । अतः निर्ग्रन्थ मृषावाद का पूर्णरूप से परित्याग कर दे ।

सूत्र - २३८-२३९

संयमी साधु-साध्वी, पदार्थ सचेतन हो या अचेतन, अल्प हो या बहुत, यहाँ तक कि दन्तशोधन मात्र भी हो, जिस गृहस्थ के अवग्रह में हो; उससे याचना किये बिना स्वयं ग्रहण नहीं करते, दूसरों से ग्रहण नहीं कराते और न ग्रहण करने वाला का अनुमोदन करते हैं ।

सूत्र - २४०-२४१

अब्रह्मचर्य लोकमें घोर, प्रमादजनक, दुराचरित है । संयमभंग करनेवाले स्थानोंसे दूर रहनेवाले मुनि उसका आचरण नहीं करते। यह अधर्म का मूल है। महादोषों का पुंज है । इसीलिए निर्ग्रन्थ मैथुन संसर्ग का त्याग करते है।

सूत्र - २४२-२४६

जो ज्ञानपुत्र के वचनों में रत हैं, वे बिडलवण, सामुद्रिक लवण, तैल, घृत, द्रव गुड़ आदि पदार्थों का संग्रह करना नहीं चाहते । यह संग्रह लोभ का ही विघ्नकारी अनुस्पर्श है, ऐसा मैं मानता हूँ । जो साधु कदाचित् पदार्थ की सन्निधि की कामना करता है, वह गृहस्थ है, प्रव्रजित नहीं है ।

जो भी वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरण रखते हैं, उन्हें भी वे संयम और लज्जा की रक्षा के लिए ही रखते हैं और उनका उपयोग करते हैं ।

समस्त जीवों के त्राता ज्ञातपुत्र ने इस (वस्त्रादि उपकरण समुदाय) को परिग्रह नहीं कहा है । 'मूर्च्छा परिग्रह है' – ऐसा महर्षि ने कहा है । यथावद् वस्तुतत्त्वज्ञ साधु सर्व उपधि का संरक्षण करने और उन्हें ग्रहण करने में ममत्वभाव का आचरण नहीं करते, इतना ही नहीं, वे अपने शरीर पर भी ममत्व नहीं करते ।

सूत्र - २४७-२५०

अहो ! समस्त तीर्थकरों ने संयम के अनुकूल वृत्ति और एक बार भोजन इस नित्य तपःकर्म का उपदेश दिया है । ये जो त्रस और स्थावर अतिसूक्ष्म प्राणी हैं, जिन्हें रात्रि में नहीं देख पाता, तब आहार की एषणा कैसे कर सकता है ? उदक से आर्द्र, बीजों से संसक्त आहार को तथा पृथ्वी पर पड़े हुए प्राणियों को दिन में बचाया जा सकता है, तब फिर रात्रि में निर्ग्रन्थ भिक्षाचर्या कैसे कर सकता है ?

ज्ञातपुत्र ने इसी दोष को देख कर कहा-निर्ग्रन्थ साधु रात्रिभोजन नहीं करते । वे रात्रि में चारों प्रकार के आहार का सेवन नहीं करते ।

सूत्र - २५१-२५३

श्रेष्ठ समाधि वाले संयमी मन, वचन और काय-योग से और कृत, कारित एवं अनुमोदन-करण से पृथ्वीकाय की हिंसा नहीं करते । पृथ्वीकाय की हिंसा करता हुआ साधक उसके आश्रित रहे हुए विविध प्रकार के चाक्षुष त्रस और स्थावर प्राणियों की हिंसा करता है । इसलिए इसे दुर्गतिवर्द्धक दोष जान कर यावज्जीवन पृथ्वीकाय के समारम्भ का त्याग करे ।

सूत्र - २५४-२५६

सुसमाधिमान् संयमी मन, वचन और काय-त्रिविध करण से अप्काय की हिंसा नहीं करते । अप्कायिक जीवों की हिंसा करता हुआ साधक उनके आश्रित रहे हुए विविध चाक्षुष और अचाक्षुष त्रस और स्थावर प्राणियों की हिंसा करता है । इसलिए इसे दुर्गतिवर्द्धक दोष जान कर यावज्जीवन अप्काय के समारम्भ का त्याग करे ।

सूत्र - २५७

साधु-साध्वी-अग्नि को जलाने की इच्छा नहीं करते; क्योंकि वह दूसरे शस्त्रों की अपेक्षा तीक्ष्ण शस्त्र तथा सब ओर से दुराश्रय है । वह चारो दिक्षा, उर्ध्व तथा अधोदिशा और विदिशाओं में सभी जीवों का दहन करती है । निःसन्देह यह अग्नि प्राणियों के लिए आघातजनक है । अतः संयमी प्रकाश और ताप के लिए उस का किंचिन्मात्र भी आरम्भ न करे। इसे दुर्गतिवर्द्धक दोष जानकर (साधुवर्ग) जीवन-पर्यन्त अग्निकाय के समारम्भ का त्याग करे ।

सूत्र - २६१-२६४

तीर्थकरदेव वायु के समारम्भ को अग्निसमारम्भ के सदृश ही मानते हैं । यह सावद्य-बहुल है । अतः यह षट्काय के त्राता साधुओं के द्वारा आसेवित नहीं है । ताड़ के पंखे से, पत्र से, वृक्ष की शाखा से, स्वयं हवा करना तथा दूसरों से करवाना नहीं चाहते और अनुमोदन भी नहीं करते हैं । जो भी वस्त्र, पात्र, कम्बल या रजोहरण हैं, उनके द्वारा (भी) वे वायु की उदीरणा नहीं करते, किन्तु यतनापूर्वक वस्त्र-पात्रादि उपकरण को धारण करते हैं । इस दुर्गतिवर्द्धक दोष को जान कर (साधुवर्ग) जीवनपर्यन्त वायुकाय-समारम्भ का त्याग करे ।

सूत्र - २६५-२६७

सुसमाहित संयमी मन, वचन और काय तथा त्रिविध करण से वनस्पतिकाय की हिंसा नहीं करते । वनस्पतिकाय की हिंसा करता हुआ साधु उसके आश्रित विविध चाक्षुष और अचाक्षुष त्रस और स्थावर प्राणियों की हिंसा करता है । इसे दुर्गतिवर्द्धक दोष जान कर (साधुवर्ग) जीवन भर वनस्पतिकाय के समारम्भ का त्याग करे

सूत्र - २६८-२७०

सुसमाधियुक्त संयमी मन, वचन, काया तथा त्रिविध करण से त्रसकायिक जीवों की हिंसा नहीं करते । त्रसकाय की हिंसा करता हुआ उसके आश्रित अनेक प्रकार के चाक्षुष और अचाक्षुष प्राणियों की हिंसा करता है । इसे दुर्गतिवर्द्धक दोष जान कर जीवनपर्यन्त त्रसकाय के समारम्भ का त्याग करे ।

सूत्र - २७१-२७४

जो आहार आदि चार पदार्थ ऋषियों के लिए अकल्पनीय हैं, उनका विवर्जन करता हुआ (साधु) संयम का पालन करे। अकल्पनीय पिण्ड, शय्या, वस्त्र और पात्र को ग्रहण करने की इच्छा न करे, ये कल्पनीय हों तो ग्रहण करे । जो साधु-साध्वी नित्य निमंत्रित कर दिया जाने वाला, क्रीत, औद्देशिक आहृत आहार ग्रहण करते हैं, वे प्राणियों के वध का अनुमोदन करते हैं, ऐसा महर्षि महावीर ने कहा है । इसलिए धर्मजीवी, स्थितात्मा, निर्ग्रन्थ, क्रीत, औद्देशिक एवं आहृत अशन-पान आदि का वर्जन करते है ।

सूत्र - २७५-२७७

गृहस्थ के कांसे के कटोरे में या बर्तन में जो साधु अशन, पान आदि खाता-पीता है, वह श्रमणाचार से परिभ्रष्ट हो जाता है । (गृहस्थ के द्वारा) उन बर्तनों को सचित्त जल से धोने में और बर्तनों के धोए हुए पानी को डालने में जो प्राणी निहत होते हैं, उसमें तीर्थकरों ने असंयम देखा है । कदाचित् पश्चात्कर्म और पुरःकर्म दोष संभव है । इसी कारण वे गृहस्थ के पात्र में भोजन नहीं करते ।

सूत्र - २७८-२८०

आर्य के लिए आसन्दी और पलंग पर, मंच और आसालक पर बैठना या सोना अनाचरित है । तीर्थकरदेवों द्वारा कथित आचार का पालन करनेवाले निर्ग्रन्थ में बैठना भी पड़े तो बिना प्रतिलेखन किये, आसन्दी, पलंग आदि बैठते उठते या सोते नहीं है । ये सब शयनासन गम्भीर छिद्र वाले होते हैं, इनमें सूक्ष्म प्राणियों का प्रतिलेखन करना दुःशक्य होता है; इसलिए आसन्दी आदि पर बैठना या सोना वर्जित है ।

सूत्र - २८१-२८४

भिक्षा के लिए प्रविष्ट जिस (साधु) को गृहस्थ के घर में बैठना अच्छा लगता है, वह इस प्रकार के अनाचार को तथा उसके अबोधि रूप फल को प्राप्त होता है । वहां बैठने से ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने में विपत्ति, प्राणियों का वध होने से संयम का घात, भिक्षाचरों को अन्तराय और घर वालों को क्रोध, उत्पन्न होता है,

(गृहस्थ के घर में बैठने से) ब्रह्मचर्य की असुरक्षा होती है; स्त्रियों के प्रति भी शंका उत्पन्न होती है । अतः यह गृहस्थगृहनिषद्या कुशीलता बढ़ाने वाला स्थान है, साधु इसका दूर से ही परिवर्जन कर दे । जरा ग्रस्त, व्याधि पीड़ित और तपस्वी के लिए गृहस्थ के घर में बैठना कल्पनीय है ।

सूत्र - २८५-२८७

रोगी हो या नीरोगी, जो साधु स्नान करने की इच्छा करता है, उसके आचार का अतिक्रमण होता है; उसका संयम भी त्यक्त होता है । पोली भूमि में और भूमि को दरारों में सूक्ष्म प्राणी होते हैं । प्रासुक जल से भी स्नान करता हुआ भिक्षु उन्हें पल्वित कर देता है । इसलिए वे शीतल या उष्ण जल से स्नान नहीं करते । वे जीवन भर घोर अस्नानव्रत पर दृढता से टिके रहते हैं ।

सूत्र - २८८-२९१

संयमी साधु स्नान अथवा अपने शरीर का उबटन करने के लिए कल्क, लोघ्न, या पद्मराग का कदापि उपयोग नहीं करते । नग्न, मुण्डित, दीर्घ रोम और नखों वाले तथा मैथुनकर्म से उपशान्त साधु को विभूषा से क्या प्रयोजन है ? विभूषा के निमित्त से साधु चिकने कर्म बाँधना है, जिसके कारण वह दुस्तर संसार-सागर में जा

पड़ता है। तीर्थकर देव विभूषा में संलग्न चित्त को कर्मबन्ध का हेतु मानते हैं। ऐसा चित्त सावद्य-बहुल है। यह षट् काय के त्राता के द्वारा आसेवित नहीं है।

सूत्र - २९२

व्यामोह-रहित तत्त्वदर्शी तथा तप, संयम और आर्जव गुण में रत रहने वाले वे साधु अपने शरीर को क्षीण कर देते हैं। वे पूर्वकृत पापों का क्षय कर डालते हैं और नये पाप नहीं करते।

सूत्र - २९३

सदा उपशान्त, ममत्व-रहित, अकिंचन अपनी अध्यात्म-विद्या के अनुगामी तथा जगत् के जीवों के त्राता और यशस्वी हैं, शरदऋतु के निर्मल चन्द्रमा के समान सर्वथा विमल साधु सिद्धि को अथवा सौधर्मावतंसक आदि विमानों को प्राप्त करते हैं। - ऐसा मैं कहता हूँ।

अध्ययन-६ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-७-वाक्यशुद्धि

सूत्र - २९४

प्रज्ञावान् साधु चारों ही भाषाओं को जान कर दो उत्तम भाषाओं का शुद्ध प्रयोग करना सीखे और दो (अधम) भाषाओं को सर्वथा न बोले ।

सूत्र - २९५-२९८

तथा जो भाषा सत्य है, किन्तु अवक्तव्य है, जो सत्या-मृषा है, तथा मृषा है एवं जो असत्यामृषा है, (किन्तु) तीर्थकर देवों के द्वारा अनाचीर्ण है, उसे भी प्रज्ञावान् साधु न बोले । जो असत्याऽमृषा और सत्यभाषा अनवद्य, अकर्कश और असंदिग्ध हो, उसे सम्यक् प्रकार से विचार कर बोले ।

सत्यामृषा भी न बोले, जिसका यह अर्थ है, या दूसरा है ? (इस प्रकार से) अपने आशय को संदिग्ध बना देती हो । जो मनुष्य सत्य दीखनेवाली असत्य वस्तु का आश्रय लेकर बोलता है, उससे भी वह पाप से स्पृष्ट होता है, तो फिर जो मृषा बोलता है, उसके पाप का तो क्या कहना ?

सूत्र - २९९-३०३

हम जाएंगे, हम कह देंगे, हमारा अमुक (कार्य) अवश्य हो जाएगा, या मैं अमुक कार्य करूंगा, अथवा यह (व्यक्ति) यह (कार्य) अवश्य करेगा; यह और इसी प्रकार की दूसरी भाषाएँ, जो भविष्य, वर्तमान अथवा अतीतकाल-सम्बन्धी अर्थ के सम्बन्ध में शंकित हों; धैर्यवान् साधु न बोले ।

अतीत, वर्तमान और अनागत काल सम्बन्धी जिस अर्थ को न जानता हो अथवा जिसके विषय में शंका हो उसके विषय में 'यह इसी प्रकार है,' ऐसा नहीं बोलना । अतीत, वर्तमान और अनागत काल सम्बन्धी जो अर्थ निःशंकित हो, उसके विषय में 'यह इस प्रकार है,' ऐसा निर्देश करे ।

सूत्र - ३०४-३०६

इसी प्रकार जो भाषा कठोर हो तथा बहुत प्राणियों का उपघात करने वाली हो, वह सत्य होने पर भी बोलने योग्य नहीं है; क्योंकि ऐसी भाषा से पापकर्म का बन्ध (या आस्रव) होता है । इसी प्रकार काने को काना, नपुंसक को नपुंसक तथा रोगी को रोगी और चोर को चोर न कहे । इस उक्त अर्थ से अथवा अन्य ऐसे जिस अर्थ से कोई प्राणी पीड़ित होता है, उस अर्थ को आचार सम्बन्धी भावदोष को जाननेवाला प्रज्ञावान् साधु न बोले ।

सूत्र - ३०७-३१३

इसी प्रकार प्रज्ञावान् साधु, 'रे होल !, रे गोल !, ओ कुत्ते !, ऐ वृषल (शूद्र) !, हे द्रमक !, ओ दुर्भग !' इस प्रकार न बोले । स्त्री को-हे दादी !, हे परदादी !, हे मां !, हे मौसी !, हे बुआ !, ऐ भानजी !, अरी पुत्री !, हे नातिन, हे हला !, हे अन्ने !, हे भट्टे !, हे स्वामिनि !, हे गोमिनि ! - इस प्रकार आमन्त्रित न करे । किन्तु यथायोग्य गुणदोष, वय आदि का विचार कर एक बार या बार-बार उन्हें उनके नाम या गोत्र से आमन्त्रित करे ।

पुरुष को-हे दादा !, हे परदादा !, हे पिता !, हे चाचा !, हे मामा !, हे भानजा !, हे पुत्र !, हे पोते !, हे हल !, हे अन्न !, हे भट्ट !, हे स्वामिन् !, हे वृषल !' इस प्रकार आमन्त्रित न करे । किन्तु यथायोग्य गुणदोष, वय आदि का विचार कर एक बार या बार-बार उन्हें उनके नाम या गोत्र से आमन्त्रित करे ।

सूत्र - ३१४-३१६

पंचेन्द्रिय प्राणियों को जब तक 'यह मादा अथवा नर है' यह निश्चयपूर्वक न जान ले, तब तक यह मनुष्य की जाति है, यह गाय की जाति है, इस प्रकार बोले । इसी प्रकार मनुष्य, पशु-पक्षी अथवा सर्प (सरीसृप) को देख कर के स्थूल है, प्रमेदुर है, वध्य है, या पाक्य है, इस प्रकार न कहे । प्रयोजनवश बोलना ही पड़े तो उसे परिवृद्ध,

उपचित, संजात, प्रीणित या (यह) महाकाय है, इस प्रकार बोले ।

सूत्र - ३१७-३१८

इसी प्रकार प्रज्ञावान् मुनि- 'ये गायें दुहने योग्य हैं, ये बछड़े दमन योग्य हैं, वहन करने योग्य है, रथ योग्य हैं; इस प्रकार न बोले । प्रयोजनवश बोलना ही पड़े तो यह युवा बैल है, यह दूध देनेवाली है तथा छोटा बैल, बड़ा बैल अथवा संवहन योग्य है, इस प्रकार बोले ।

सूत्र - ३१९-३२१

इसी प्रकार उद्यान में, पर्वतों पर अथवा वनों में जाकर बड़े-बड़े वृक्षों को देख कर प्रज्ञावान् साधु इस प्रकार न बोले- 'ये वृक्ष प्रासाद, स्तम्भ, तोरण, घर, परिघ, अर्गला एवं नौका तथा जल की कुंडी, पीठ, काष्ठपात्र, हल, मयिक, यंत्रयष्टि, गाड़ी के पहिये की नाभि अथवा अहरन, आसन, शयन, यान और उपाश्रय के (लिए) उपयुक्त कुछ (काष्ठ) हैं-इस प्रकार की भूतोपघातिनी भाषा प्रज्ञासम्पन्न साधु न बोले ।

सूत्र - ३२३-३२४

(कारणवश) उद्यान में, पर्वतों पर या वनों में जा कर रहा हुआ प्रज्ञावान् साधु वहां बड़े-बड़े वृक्षों को देख इस प्रकार कहे- 'ये वृक्ष उत्तम जातिवाले हैं, दीर्घ, गोल, महालय, शाखाओं एवं प्रशाखाओं वाले तथा दर्शनीय हैं, इस प्रकार बोले ।

सूत्र - ३२५-३२६

तथा ये फल परिपक्व हो गए हैं, पका कर खाने के योग्य हैं, ये फल कालोचित हैं, इनमें गुठली नहीं पड़ी, ये दो टुकड़े करने योग्य हैं-इस प्रकार भी न बोले । प्रयोजनवश बोलना पड़े तो ' 'ये आम्रवृक्ष फलों का भार सहने में असमर्थ हैं, बहुनिर्वर्तित फल वाले हैं, बहु-संभूत हैं अथवा भूतरूप हैं; इस प्रकार बोले ।

सूत्र - ३२७-३२८

इसी प्रकार- 'ये धान्य-ओषधियाँ पक गई हैं, नीली छाल वाली हैं, काटने योग्य हैं, ये भूनने योग्य हैं, अग्नि में सेक कर खाने योग्य हैं; इस प्रकार न कहे । यदि प्रयोजनवश कुछ कहना हो तो ये ओषधियाँ अंकुरित, प्रायः निष्पन्न, स्थिरीभूत, उपघात से पार हो गई हैं । अभी कण गर्भ में हैं या कण गर्भ से बाहर निकल आये हैं, या सिट्टे परिपक्व बीज वाले हो गये हैं, इस प्रकार बोले ।

सूत्र - ३२९-३३२

इसी प्रकार साधु को जीमणवार (संखडी) और कृत्य (मृतकभोज) जान कर ये करणीय हैं, यह चोर मारने योग्य हैं, ये नदियाँ अच्छी तरह से तैरने योग्य हैं, इस प्रकार न बोले- (प्रयोजनवश कहना पड़े तो) संखडी को (यह) संखडी है, चोर को 'अपने प्राणों को कष्ट में डालकर स्वार्थ सिद्ध करने वाला' कहें । और नदियों के तीर्थ बहुत सम हैं, इस प्रकार बोले ।

तथा ये नदियाँ जल से पूर्ण भरी हुई हैं; शरीर से तैरने योग्य हैं, इस प्रकार न कहे । तथा ये नौकाओं द्वारा पार की जा सकती हैं, एवं प्राणी इनका जल पी सकते हैं, ऐसा भी न बोले । (प्रयोजनवश कहना पड़े तो) प्रायः जल से भरी हुई हैं; अगाध हैं, ये बहुत विस्तृत जल वाली हैं,-प्रज्ञावान् भिक्षु इस प्रकार कहे ।

सूत्र - ३३३-३३५

इसी प्रकार सावद्य व्यापार दूसरे के लिए किया गया हो, किया जा रहा हो अथवा किया जाएगा ऐसा जान कर सावद्य वचन मुनि न बोले । कोई सावद्य कार्य हो रहा हो तो उसे देखकर बहुत अच्छा किया, यह भोजन बहुत अच्छा पकाया है; अच्छा काटा है; अच्छा हुआ इस कृपण का धन हरण हुआ; (अच्छा हुआ, वह दुष्ट) मर गया,

बहुत अच्छा निष्पन्न हुआ है; (यह कन्या) अतीव सुन्दर है; इस प्रकार के सावद्य वचनों का मुनि प्रयोग न करे। (प्रयोजनवश कभी बोलना पड़े तो) 'यह प्रयत्न से पकाया गया है', 'प्रयत्न से काटा गया है' प्रयत्नपूर्वक लालन-पालन किया गया है, तथा यह प्रहार गाढ है, ऐसा (निर्दोष वचन) बोले।

सूत्र - ३३६

यह वस्तु सर्वोत्कृष्ट, बहुमूल्य, अतुल है, इसके समान दूसरी कोई वस्तु नहीं है, यह वस्तु अवर्णनीय या अप्रीतिकर है; इत्यादि व्यापारविषयक वचन न कहे।

सूत्र - ३३७

कोई गृहस्थ किसी को संदेश कहने को कहे तब 'मैं तुम्हारी सब बातें उससे अवश्य कह दूंगा' (अथवा किसी को संदेश कहलाते हुए) 'यह सब उससे कह देना'; इस प्रकार न बोले; किन्तु पूर्वापर विचार करके बोले।

सूत्र - ३३८

अच्छा किया यह खरीद लिया अथवा बेच दिया, यह पदार्थ खराब है, खरीदने योग्य नहीं है अथवा अच्छा है, खरीदने योग्य है; इस माल को ले लो अथवा बेच डालो (इस प्रकार) व्यवसाय-सम्बन्धी (वचन), साधु न कहे।

सूत्र - ३३९

कदाचित् कोई अल्पमूल्य अथवा बहुमूल्य माल खरीदने या बेचने के विषय में (पूछे तो) व्यावसायिक प्रयोजन का प्रसंग उपस्थित होने पर साधु या साध्वी निरवद्य वचन बोले।

सूत्र - ३४०

इसी प्रकार धीर और प्रज्ञावान् साधु असंयमी को-यहाँ बैठ, इधर आ, यह कार्य कर, सो जा, खड़ा हो जा या चला जा, इस प्रकार न कहे।

सूत्र - ३४१-३४२

ये बहुत से असाधु लोक में साधु कहलाते हैं; किन्तु निर्ग्रन्थ साधु असाधु को-'यह साधु है', इस प्रकार न कहे, साधु को ही-'यह साधु है;' ऐसा कहे। ज्ञान और दर्शन से सम्पन्न तथा संयम और तप में रत-ऐसे सदगुणों से समायुक्त संयमी को ही साधु कहे।

सूत्र - ३४३

देवों, मनुष्यों अथवा तिर्यञ्चों का परस्पर संग्राम होने पर अमुक की विजय हो, अथवा न हो,-इस प्रकार न कहे।

सूत्र - ३४४

वायु, वृष्टि, सर्दी, गर्मी, क्षेम, सुभिक्ष अथवा शिव, ये कब होंगे ? अथवा ये न हों इस प्रकार न कहे।

सूत्र - ३४५

मेघ को, आकाश को अथवा मानव को-'यह देव है, यह देव है', इस प्रकार की भाषा न बोले। किन्तु-'यह मेघ' उमड़ रहा है, यह मेघमाला बरस पड़ी है, इस प्रकार बोले।

सूत्र - ३४६

साधु, नभ और मेघ को-अन्तरिक्ष तथा गुह्यानुचरित कहे तथा ऋद्धिमान् मनुष्य को 'यह ऋद्धिशाली है', ऐसा कहे।

सूत्र - ३४७

जो भाषा सावद्य का अनुमोदन करनेवाली हो, जो निश्चयकारिणी एवं परउपघातकारिणी हो, उसे क्रोध, लोभ, भय या हास्यवश भी न बोले ।

सूत्र - ३४८

जो मुनि श्रेष्ठ वचनशुद्धि का सम्यक् सम्प्रेक्षण करके दोषयुक्त भाषा को सर्वदा सर्वथा छोड़ देता है तथा परिमित और दोषरहित वचन पूर्वापर विचार करके बोलता है, वह सत्पुरुषों के मध्य में प्रशंसा प्राप्त करता है ।

सूत्र - ३४९

षड्जीवनिकाय के प्रति संयत तथा श्रामण्यभाव में सदा यत्नशील रहने वाला प्रबुद्ध साधु भाषा के दोषों और गुणों को जान कर एवं उसमें से दोषयुक्त भाषा को सदा के लिए छोड़ दे और हितकारी तथा आनुलोमिक वचन बोले ।

सूत्र - ३५०

जो साधु गुण-दोषों की परीक्षा करके बोलने वाला है, जिसकी इन्द्रियाँ सुसमाहित हैं, चार कषायों से रहित है, अनिश्रित है, वह पूर्वकृत पाप-मल को नष्ट करके इस लोक तथा परलोक का आराधक होता है । -ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-७ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-८-आचारप्रणिधि

सूत्र - ३५१

आचार-प्रणिधि को पाकर, भिक्षु को जिस प्रकार (जो) करना चाहिए, वह मैं तुम्हें कहूँगा, जिसे तुम अनुक्रम से मुझ से सुनो ।

सूत्र - ३५२-३५३

पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय तथा वनस्पतिकाय तथा त्रस प्राणी; ये जीव हैं, ऐसा महर्षि ने कहा है । उन के प्रति मन, वचन और काया से सदा अहिंसामय व्यापारपूर्वक ही रहना चाहिए । इस प्रकार (अहिंसकवृत्ति से रहने वाला) संयत होता है ।

सूत्र - ३५४-३५५

सुसमाहित संयमी तीन करण तीन योग से पृथ्वी, भित्ति, शिला अथवा मिट्टी का, ढले का स्वयं भेदन न करे और न उसे कुरेदे, सचित्त पृथ्वी और सचित्त रज से संसृष्ट आसन पर न बैठे । (यदि बैठना हो तो) जिसकी वह भूमि हो, उससे आज्ञा मांग कर तथा प्रमार्जन करके बैठे ।

सूत्र - ३५६-३५७

संयमी साधु शीत उदक, ओले, वर्षा के जल और हिम का सेवन न करे । तपा हुआ गर्म जल तथा प्रासुक जल ही ग्रहण करे । सचित्त जल से भीगे हुए अपने शरीर को न तो पोंछे और न ही मले । तथाभूत शरीर को देखकर, उसका स्पर्श न करे ।

सूत्र - ३५८

मुनि जलते हुए अंगारे, अग्नि, त्रुटित अग्नि की ज्वाला, जलती हुई लकड़ी को न प्रदीप्त करे, न हिलाए और न उसे बुझाए ।

सूत्र - ३५९

साधु ताड़ के पंखे से, पत्ते से, वृक्ष की शाखा से अथवा सामान्य पंखे से अपने शरीर को अथवा बाह्य पुद्गल को भी हवा न करे ।

सूत्र - ३६०-३६१

मुनि तृण, वृक्ष, फल, तथा मूल का छेदन न करे, विविध प्रकार के सचित्त बीजों की मन से भी इच्छा न करे। वनकुंजों में, बीजों, हरित तथा उदक, उत्तिंग और पनक पर खड़ा न रहे ।

सूत्र - ३६२

मुनि वचन अथवा कर्म से त्रस प्राणियों की हिंसा न करे । समस्त जीवों की हिंसा से उपरत साधु विविध स्वरूप वाले जगत् को (विवेकपूर्वक) देखे ।

सूत्र - ३६३-३६६

संयमी साधु जिन्हें जान कर समस्त जीवों के प्रति दया का अधिकारी बनता है, उन आठ प्रकार के सूक्ष्मों को भलीभांति देखकर ही बैठे, खड़ा हो अथवा सोए । वे आठ सूक्ष्म कौन-कौन से हैं ?

तब मेधावी और विचक्षण कहे कि वे ये हैं- स्नेहसूक्ष्म, पुष्पसूक्ष्म, प्राणिसूक्ष्म, उत्तिंग सूक्ष्म, पनकसूक्ष्म, बीजसूक्ष्म, हरितसूक्ष्म और आठवाँ अण्डसूक्ष्म । सभी इन्द्रियों के विषय में राग-द्वेष रहित संयमी साधु इसी प्रकार इन सूक्ष्म जीवों को सर्व प्रकार से जान कर सदा अप्रमत्त रहता हुआ यतना करे ।

सूत्र - ३६७-३६८

संयमी साधु सदैव यथासमय उपयोगपूर्वक पात्र, कम्बल, शय्या, उच्चारभूमि, संस्तारक अथवा आसन का प्रतिलेखन करे। उच्चार, प्रस्रवण, कफ, नाक का मैल और पसीना आदि डालने के लिए प्रासुक भूमि का प्रतिलेखन करके उनका (यतनापूर्वक) परिष्ठापन करे।

सूत्र - ३६९

पानी या भोजन के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करके साधु यतना से खड़ा रहे, परिमित बोले और (वहाँ के) रूप में मन को डांवाडोल न करे।

सूत्र - ३७०-३७१

भिक्षु कानों से बहुत कुछ सुनता है तथा आँखों से बहुत-से रूप (या दृश्य) देखता है किन्तु सब देखते हुए और सुने हुए को कह देना उचित नहीं। यदि सुनी या देखी हुई (घटना औपघातिक हो तो नहीं कहनी तथा किसी भी उपाय से गृहस्थोचित आचरण नहीं करना)।

सूत्र - ३७२

पूछने पर अथवा बिना पूछे भी यह सरस (भोजन) है और यह नीरस है, यह (ग्राम आदि) अच्छा है और यह बुरा है, अथवा मिला या न मिला; यह भी न कहे।

सूत्र - ३७३-३७६

भोजन में गृद्ध न हो, व्यर्थ न बोलता हुआ उज्ज भिक्षा ले। (वह) अप्रासुक, क्रीत, औद्देशिक और आहत आहार का भी उपभोग न करे। अणुमात्र भी सन्निधि न करे, सदैव मुधाजीवी असम्बद्ध और जनपद के निश्चित रहे, रूक्षवृत्ति, सुसन्तुष्ट, अल्प इच्छावाला और थोड़े से आहार से तृप्त होने वाला हो। वह जिनप्रवचन को सुन कर आसुरत्व को प्राप्त न हो। कानों के लिए सुखकर शब्दों में रागभाव स्थापन न करे, दारुण और कर्कश स्पर्श को शरीर से (समभावपूर्वक) सहन करे।

सूत्र - ३७७

क्षुधा, पिपासा, दुःशय्या, शीत, उष्ण, अरति और भय को (मुनि) अव्यथित होकर सहन करे; (क्योंकि) देह में उत्पन्न दुःख को समभाव से सहना महाफलरूप होता है।

सूत्र - ३७८

सूर्य के अस्त हो जाने पर और सूर्य उदय न हो जाए तब तक सब प्रकार के आहारादि पदार्थों की मन से भी इच्छा न करे।

सूत्र - ३७९-३८२

साधु तनतनाहट न करे, चपलता न करे, अल्पभाषी, मितभोजी और उदर का दमन करने वाला हो। थोड़ा पाकर निन्दा न करे। किसी जीव का तिरस्कार न करे। उत्कर्ष भी प्रकट न करे। श्रुत, लाभ, जाति, तपस्विता और बुद्धि से मद न करे। जानते हुए या अनजाने अधार्मिक कृत्य हो जाए तो तुरन्त उससे अपने आपको रोक ले तथा दूसरी बार वह कार्य न करे। अनाचार का सेवन करके उसे गुरु के समक्ष न छिपाए और न ही सर्वथा अपलाप करे; किन्तु सदा पवित्र प्रकट भाव धारण करनेवाला, असंसक्त एवं जितेन्द्रिय रहे।

सूत्र - ३८३

मुनि महान् आत्मा आचार्य के वचन को सफल करे। वह उनके कथन को भलीभाँति ग्रहण करके कार्य द्वारा सम्पन्न करे।

सूत्र - ३८४

जीवन को अध्रुव और आयुष्य को परिमित जान तथा सिद्धिमार्ग का विशेषरूप से ज्ञान प्राप्त करके भोगों से निवृत्त हो जाए ।

सूत्र - ३८५

अपने बल, शारीरिक शक्ति, श्रद्धा और आरोग्य को देख कर तथा क्षेत्र और काल को जान कर, अपनी आत्मा को धर्मकार्य में नियोजित करे ।

सूत्र - ३८६

जब तक वृद्धावस्था पीड़ित न करे, व्याधि न बढ़े और इन्द्रियाँ क्षीण न हों, तब तक धर्म का सम्यक् आचरण कर लो ।

सूत्र - ३८७

क्रोध, मान, माया और लोभ, पाप को बढ़ाने वाले हैं । आत्मा का हित चाहनेवाला इन चारों का अवश्यमेव वमन कर दे।

सूत्र - ३८८

क्रोध प्रीति का, मान विनय का, माया मित्रता का और लोभ तो सब का नाश करनेवाला है ।

सूत्र - ३८९

क्रोध को उपशम से, मान को मृदुता से, माया को सरलता से और लोभ पर संतोष द्वारा विजय प्राप्त करे

सूत्र - ३९०

अनिगृहीत क्रोध और मान, प्रवर्द्धमान माया और लोभ, ये चारों संक्लिष्ट कषाय पुनर्जन्म की जड़ें सींचते हैं

सूत्र - ३९१

(साधु) रत्नाधिकों के प्रति विनयी बने, ध्रुवशीलता को न त्यागे । कछुए की तरह आलीनगुप्त और प्रलीनगुप्त होकर तप-संयम में पराक्रम करे ।

सूत्र - ३९२

साधु निद्रा को बहु मान न दे । अत्यन्त हास्य को वर्जित करे, पारस्परिक विकथाओं में रमण न करे, सदा स्वाध्याय में रत रहे ।

सूत्र - ३९३

साधु आलस्यरहित होकर श्रमणधर्म में योगों को सदैव नियुक्त करे; क्योंकि श्रमणधर्म में संलग्न साधु अनुत्तर अर्थ को प्राप्त करता है ।

सूत्र - ३९४

जिस के द्वारा इहलोक और परलोक में हित होता है, सुगति होती है । वह बहुश्रुत (मुनि) की पर्युपासना करे और अर्थ के विनिश्चय के लिए पृच्छा करे ।

सूत्र - ३९५

जितेन्द्रिय मुनि (अपने) हाथ, पैर और शरीर को संयमित करके आलीन और गुप्त होकर गुरु के समीप बैठे

सूत्र - ३९६

आचार्य आदि के पार्श्व
भाग में, आगे और पृष्ठभाग में न बैठे तथा गुरु के समीप उरु सटा कर (भी) न बैठे

सूत्र - ३९७

विनीत साधु बिना पूछे न बोले, (वे) बात कर रहे हों तो बीच में न बोले । चुगली न खाए और मायामृषा का वर्जन करे।

सूत्र - ३९८

जिससे अप्रीति उत्पन्न हो अथवा दूसरा शीघ्र ही कुपित होता हो, ऐसी अहितकर भाषा सर्वथा न बोले ।

सूत्र - ३९९

आत्मवान् साधु दृष्ट, परिमित, असंदिग्ध, परिपूर्ण, व्यक्त, परिचित, अजल्पित और अनुद्विग्न भाषा बोले ।

सूत्र - ४००

आचारांग और व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के धारक एवं दृष्टिवाद के अध्येता साधु वचन से स्वलित हो जाएँ तो मुनि उनका उपहास न करे ।

सूत्र - ४०१

नक्षत्र, स्वप्नफल, वशीकरणादि योग, निमित्त, मन्त्र, भेषज आदि अयोग्य बातें गृहस्थों को न कहे; क्योंकि ये प्राणियों के अधिकरण स्थान हैं ।

सूत्र - ४०२

दूसरों के लिए बने हुए, उच्चारभूमि से युक्त तथा स्त्री और पशु से रहित स्थान, शय्या और आसन का सेवन करे ।

सूत्र - ४०३

यदि उपाश्रय विविक्त हो तो केवल स्त्रियों के बीच धर्मकथा न कहे; गृहस्थों के साथ संस्तव न करे, साधुओं के साथ ही परिचय करे ।

सूत्र - ४०४

जिस प्रकार मुर्गे के बच्चे को बिल्ली से सदैव भय रहता है, इसी प्रकार ब्रह्मचारी को स्त्री के शरीर से भय होता है ।

सूत्र - ४०५

चित्रभित्ति अथवा विभूषित नारी को टकटकी लगा कर न देखे । कदाचित् सहसा उस पर दृष्टि पड़ जाए तो दृष्टि तुरंत उसी तरह वापस हटा ले, जिस तरह सूर्य पर पड़ी हुई दृष्टि हटा ली जाती है ।

सूत्र - ४०६

जिसके हाथ-पैर कटे हुए हों, जो कान और नाक से विकल हो, वैसी सौ वर्ष की नारी (के संसर्ग) का भी ब्रह्मचारी परित्याग कर दे ।

सूत्र - ४०७

आत्मगवेषी पुरुष के लिए विभूषा, स्त्रीसंसर्ग और स्निग्ध रस-युक्त भोजन तालपुट विष के समान है ।

सूत्र - ४०८

स्त्रियों के अंग, प्रत्यंग, संस्थान, चारु-भाषण और कटाक्ष के प्रति (साधु) ध्यान न दे, क्योंकि ये कामराग को बढ़ाने वाले हैं ।

सूत्र - ४०९

शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श, इन पुद्गलों के परिणमन को अनित्य जान कर मनोज्ञ विषयों में रागभाव स्थापित न करे ।

सूत्र - ४१०

उन (इन्द्रियों के विषयभूत) पुद्गलों के परिणमन को जैसा है, वैसा जान कर अपनी प्रशान्त आत्मा से तृष्णारहित होकर विचरण करे ।

सूत्र - ४११

जिस (वैराग्यभावपूर्ण) श्रद्धा से घर से निकला और प्रव्रज्या को स्वीकार किया, उसी श्रद्धा से मूल-गुणों का अनुपालन करे ।

सूत्र - ४१२

(जो मुनि) इस तप, संयमभोग और स्वाध्याययोग में सदा निष्ठापूर्वक प्रवृत्त रहता है, वह अपनी और दूसरों की रक्षा करने में उसी प्रकार समर्थ होता है, जिस प्रकार सेना से घिर जाने पर समग्र शस्त्रों से सुसज्जित शूरवीर ।

सूत्र - ४१३

स्वाध्याय और सदध्यान में रत, त्राता, निष्पापभाव वाले (तथा) तपश्चरण में रत मुनि का पूर्वकृत कर्म उसी प्रकार विशुद्ध होता है, जिस प्रकार अग्नि द्वारा तपाए हुए रूप्य का मल ।

सूत्र - ४१४

जो (पूर्वोक्त) गुणों से युक्त है, दुःखों को सहन करने वाला है, जितेन्द्रिय है, श्रुत युक्त है, ममत्वरहित और अकिंचन है; वह कर्मरूपी मेघों के दूर होने पर, उसी प्रकार सुशोभित होता है, जिस प्रकार सम्पूर्ण अभ्रपटल से विमुक्त चन्द्रमा । - ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-८ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-९-विनयसमाधि**अध्ययन-९ – विनयसमाधि उद्देशक - १****सूत्र - ४१५**

(जो साधक) गर्व, क्रोध, माया और प्रमादवश गुरुदेव के समीप विनय नहीं सीखता, (उसके) वे (अहंकारादि दुर्गुण) ही वस्तुतः उस के ज्ञानादि वैभव वांस के फल के समान विनाश के लिए होता है ।

सूत्र - ४१६-४१७

जो गुरु की 'ये मन्द, अल्पवयस्क तथा अल्पश्रुत हैं' ऐसा जान कर हीलना करते हैं, वे मिथ्यात्व को प्राप्त करके गुरुओं की आशातना करते हैं । कई स्वभाव से ही मन्द होते हैं और कोई अल्पवयस्क भी श्रुत और बुद्धि से सम्पन्न होते हैं । वे आचारवान् और गुणों में सुस्थितात्मा आचार्य की अवज्ञा किये जाने पर (गुणराशि को उसी प्रकार) भस्म कर डालते हैं, जिस प्रकार इन्धनराशि को अग्नि ।

सूत्र - ४१८-४१९

जो कोई सर्प को 'छोटा बच्चा है' यह जान कर उसकी आशातना करता है, वह (सर्प) उसके अहित के लिए होता है, इसी प्रकार आचार्य की भी अवहेलना करने वाला मन्दबुद्धि भी संसार में जन्म-मरण के पथ पर गमन करता है । अत्यन्त क्रुद्ध हुआ भी आशीविष सर्प जीवन-नाश से अधिक और क्या कर सकता है ? परन्तु अप्रसन्न हुए पूज्यपाद आचार्य तो अबोधि के कारण बनते हैं, जिससे मोक्ष नहीं मिलता ।

सूत्र - ४२०-४२१

जो प्रज्वलित अग्नि को मसलता है, आशीविष सर्प को कुपित करता है, या जीवितार्थी होकर विषभक्षण करता है, ये सब उपमाएँ गुरुओं की आशातना के साथ (घटित होती हैं) कदाचित् वह अग्नि न जलाए, कुपित हुआ सर्प भी न डसे, वह हलाहल विष भी न मारे; किन्तु गुरु की अवहेलना से (कदापि) मोक्ष सम्भव नहीं है ।

सूत्र - ४२२-४२३

जो पर्वत को सिर से फोड़ना चाहता है, सोये हुए सिंह को जगाता है, या जो शक्ति की नोक पर प्रहार करता है, गुरुओं की आशातना करने वाला भी इनके तुल्य है । सम्भव है, कोई अपने सिर से पर्वत का भी भेदन कर दे, कुपित हुआ सिंह भी न खाए अथवा भाले की नोक भी उसे भेदन न करे; किन्तु गुरु की अवहेलना से मोक्ष (कदापि) सम्भव नहीं है ।

सूत्र - ४२४

आचार्यप्रवर के अप्रसन्न होने पर बोधिलाभ नहीं होता तथा (उनकी) आशातना से मोक्ष नहीं मिलता । इसलिए निराबाध सुख चाहनेवाला साधु गुरु की प्रसन्नता के अभिमुख होकर प्रयत्नशील रहे ।

सूत्र - ४२५

जिस प्रकार आहिताग्नि ब्राह्मण नाना प्रकार की आहुतियों और मंत्रपदों से अभिषिक्त की हुई अग्नि को नमस्कार करता है, उसी प्रकार शिष्य अनन्तज्ञान-सम्पन्न हो जाने पर भी आचार्य की विनयपूर्वक सेवा-भक्ति करे ।

सूत्र - ४२६

जिसके पास धर्म-पदों का शिक्षण ले, हे शिष्य ! उसके प्रति विनय का प्रयोग करो । सिर से नमन करके, हाथों को जोड़ कर तथा काया, वाणी और मन से सदैव सत्कार करो ।

सूत्र - ४२७

कल्याणभागी (साधु) के लिए लज्जा, दया, संयम और ब्रह्मचर्य; ये विशोधि के स्थान हैं। अतः जो गुरु मुझे निरन्तर शिक्षा देते हैं, उनकी मैं सतत पूजा करूँ।

सूत्र - ४२८-४२९

जैसे रात्रि के अन्त में प्रदीप्त होता हुआ सूर्य सम्पूर्ण भारत को प्रकाशित करता है, वैसे ही आचार्य श्रुत, शील और प्रज्ञा से भावों को प्रकाशित करते हैं तथा जिस प्रकार देवों के बीच इन्द्र सुशोभित होता है, (सुशोभित होते हैं)। जैसे मेघों से मुक्त अत्यन्त निर्मल आकाश में कौमुदी के योग से युक्त, नक्षत्र और तारागण से परिवृत चन्द्रमा सुशोभित होता है, उसी प्रकार गणी (आचार्य) भी भिक्षुओं के बीच सुशोभित होते हैं।

सूत्र - ४३०

अनुत्तर ज्ञानादि की सम्प्राप्ति का इच्छुक तथा धर्मकामी साधु (ज्ञानादि रत्नों के) महान् आकर, समाधि-योग तथा श्रुत, शील, और प्रज्ञा से सम्पन्न महर्षि आचार्यों को आराधे तथा उनकी विनयभक्ति से सदा प्रसन्न रखे।

सूत्र - ४३१

मेधावी साधु (पूर्वोक्त) सुभाषित वचनों को सुनकर अप्रमत्त रहता हुआ आचार्य की शुश्रूषा करे। इस प्रकार वह अनेक गुणों की आराधना करके अनुत्तर सिद्धि प्राप्त करता है। -ऐसा मैं कहता हूँ।

अध्ययन-९ - उद्देशक - २**सूत्र - ४३२-४३३**

वृक्ष के मूल से स्कन्ध उत्पन्न होता है, स्कन्ध से शाखाएँ, शाखाओं से प्रशाखाएँ निकलती हैं। तदनन्तर पत्र, पुष्प, फल और रस उत्पन्न होता है। इसी प्रकार धर्म (-रूप वृक्ष) का मूल विनय है और उसका परम रसयुक्त फल मोक्ष है। उस (विनय) के द्वारा श्रमण कीर्ति, श्रुत और निःश्रेयस् प्राप्त करता है।

सूत्र - ४३४

जो क्रोधी है, मृग-पशुसम अज्ञ, अहंकारी, दुर्वादी, कपटी और शठ है; वह अविनीतात्मा संसारस्रोत में वैसे ही प्रवाहित होता रहता है, जैसे जल के स्रोत में पड़ा हुआ काष्ठ।

सूत्र - ४३५

(किसी भी) उपाय से विनय (-धर्म) में प्रेरित किया हुआ जो मनुष्य कुपित हो जाता है, वह आती हुई दिव्यलक्ष्मी को डंडे से रोकता (हटाता) है।

सूत्र - ४३६-४४२

जो औपबाह्य हाथी और घोड़े अविनीत होते हैं, वे (सेवाकाल में) दुःख भोगते हुए तथा भार-वहन आदि निम्न कार्यों में जुटाये जाते हैं और जो हाथी और घोड़े सुविनीत होते हैं, वे सुख का अनुभव करते हुए महान् यश और ऋद्धि को प्राप्त करते हैं। इसी तरह इस लोक में जो नर-नारी अविनीत होते हैं, वे क्षत-विक्षत, इन्द्रियविकल, दण्ड और शस्त्र से जर्जरित, असभ्य वचनों से ताड़ित, करुण, पराधीन, भूख और प्यास से पीड़ित होकर दुःख का अनुभव करते हैं। जो नर-नारी सुविनीत होते हैं, वे ऋद्धि को प्राप्त कर महायशस्वी बने हुए सुख का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार जो देव, यक्ष और गुह्यक अविनीत होते हैं, वे पराधीनता-दासता को प्राप्त होकर दुःख भोगते हैं। और जो देव, यक्ष और गुह्यक सुविनीत होते हैं, वे ऋद्धि और महान् यश को प्राप्त कर सुख का अनुभव करते हैं।

सूत्र - ४४३

जो साधक आचार्य और उपाध्याय की सेवा-शुश्रूषा करते हैं, उनके वचनों का पालन करते हैं, उनकी शिक्षा उसी प्रकार बढ़ती है, जिस प्रकार जल से सींचे हुए वृक्ष बढ़ते हैं ।

सूत्र - ४४४-४४७

जो गृहस्थ लोग इस लोक के निमित्त, सुखोपभोग के लिए, अपने या दूसरों के लिए; शिल्पकलाएँ या नैपुण्यकलाएँ सीखते हैं । ललितेन्द्रिय व्यक्ति भी कला सीखते समय (शिक्षक द्वारा) घोर बन्ध, वध और दारुण परिताप को प्राप्त होते हैं । फिर भी वे गुरु के निर्देश के अनुसार चलने वाले उस शिल्प के लिए प्रसन्नतापूर्वक उस शिक्षकगुरु की पूजा, सत्कार व नमस्कार करते हैं । तब फिर जो साधु आगमज्ञान को पान के लिए उद्यत है और अनन्त-हित का इच्छुक है, उसका तो कहना ही क्या ? इसलिए आचार्य जो भी कहें, भिक्षु उसका उल्लंघन न करे

सूत्र - ४४८-४४९

(साधु आचार्य से) नीची शय्या करे, नीची गति करे, नीचे स्थान में खड़ा रहे, नीचा आसन करे तथा नीचा होकर आचार्यश्री के चरणों में वन्दन और अंजलि करे । कदाचित् आचार्य के शरीर का अथवा उपकरणों का भी स्पर्श हो जाए तो कहे-मेरा अपराध क्षमा करें, फिर ऐसा नहीं होगा ।

सूत्र - ४५०

जिस प्रकार दुष्ट बैल चाबुक से प्रेरित किये जाने पर (ही) रथ को वहन करता है, उसी प्रकार दुर्बुद्धि शिष्य (भी) आचार्यों के बार-बार कहने पर (कार्य) करता है ।

सूत्र - ४५१

गुरु के एक बार या बार-बार बुलाने पर बुद्धिमान् शिष्य आसन पर से ही उत्तर न दे, किन्तु आसन छोड़ कर शुश्रूषा के साथ उनकी बात सुन कर स्वीकार करे ।

सूत्र - ४५२

काल, गुरु के अभिप्राय, उपचारों तथा देश आदि को हेतुओं से भलीभाँति जानकर तदनुकूल उपाय से उस-उस योग्य कार्य को सम्पादित करे ।

सूत्र - ४५३

अविनीत को विपत्ति और विनीत को सम्पत्ति (प्राप्त) होती है, जिसको ये दोनों प्रकार से ज्ञात है, वही शिक्षा को प्राप्त होता है ।

सूत्र - ४५४

जो मनुष्य चण्ड, अपनी बुद्धि और ऋद्धि का गर्वी, पिशुन, अयोग्यकार्य में साहसिक, गुरु-आज्ञा-पालन से हीन, श्रमण-धर्म से अदृष्ट, विनय में अनिपुण और असंविभागी है, उसे (कदापि) मोक्ष (प्राप्त) नहीं होता ।

सूत्र - ४५५

किन्तु जो गुरुओं की आज्ञा के अनुसार प्रवृत्ति करते हैं, जो गीतार्थ हैं तथा विनय में कोविद हैं; वे इस दुस्तर संसार-सागर को तैर कर कर्मों का क्षय करके सर्वोत्कृष्ट गति में गए हैं । -ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-९ - उद्देशक - ३**सूत्र - ४५६**

जिस प्रकार आहिताग्नि अग्नि की शुश्रूषा करता हुआ जाग्रत रहता है; उसी प्रकार जो आचार्य की शुश्रूषा

करता हुआ जाग्रत रहता है तथा जो आचार्य के आलोकित एवं इंगित को जान कर उनके अभिप्राय की आराधना करता है, वही पूज्य होता है ।

सूत्र - ४५७

जो (शिष्य) आचार के लिए विनय करता है, जो सुनने की इच्छा रखता हुआ (उनके) वचन को ग्रहण कर के, उपदेश के अनुसार कार्य करना चाहता है और जो गुरु की आशातना नहीं करता, वह पूज्य होता है ।

सूत्र - ४५८

अल्पवयस्क होते हुए भी पर्याय में जो ज्येष्ठ हैं; उन रत्नाधिकों के प्रति जो विनय करता है, नम्र रहता है, सत्यवादी है, गुरु सेवा में रहता है और गुरु के वचनों का पालन करता है, वह पूज्य होता है ।

सूत्र - ४५९

जो संयमयात्रा के निर्वाह के लिए सदा विशुद्ध, सामुदायिक, अज्ञात, उज्ज्व चर्या करता है, जो न मिलने पर विषाद नहीं करता और मिलने पर श्लाघा नहीं करता, वह पूजनीय है ।

सूत्र - ४६०

जो (साधु) संस्तारक, शय्या, आसन, भक्त और पानी का अतिलाभ होने पर भी अल्प इच्छा रखनेवाला है, इस प्रकार जो अपने को सन्तुष्ट रखता है तथा जो सन्तोषप्रधान जीवन में रत है, वह पूज्य है ।

सूत्र - ४६१

मनुष्य लाभ की आशा से लोहे के कांटों को उत्साहपूर्वक सहता है किन्तु जो किसी लाभ की आशा के बिना कानों में प्रविष्ट होने वाले तीक्ष्ण वचनमाय कांटों को सहन करता है, वही पूज्य होता है ।

सूत्र - ४६२

लोहमय कांटे मुहूर्त्तभर दुःखदायी होते हैं; फिर वे भी से सुखपूर्वक निकाले जा सकते हैं । किन्तु वाणी से निकले हुए दुर्वचनरूपी कांटे कठिनता से निकाले जा सकनेवाले, वैर परम्परा बढ़ानेवाले और महाभयकारी होते हैं

सूत्र - ४६३

आते हुए कटुवचनों के आघात कानों में पहुँचते ही दौर्मनस्य उत्पन्न करते हैं; (परन्तु) जो वीर-पुरुषों का परम अग्रणी जितेन्द्रिय पुरुष 'यह मेरा धर्म है' ऐसा मान कर सहन कर लेता है, वही पूज्य होता है ।

सूत्र - ४६४

जो मुनि पीठ पीछे कदापि किसी का अवर्णवाद नहीं बोलता तथा प्रत्यक्ष में विरोधी भाषा एवं निश्चयकारिणी और अप्रियकारिणी भाषा नहीं बोलता, वह पूज्य होता है ।

सूत्र - ४६५

जो लोलुप नहीं होता, इन्द्रजालिक चमत्कार-प्रदर्शन नहीं करता, माया का सेवन नहीं करता, चुगली नहीं खाता, दीनवृत्ति नहीं करता, दूसरों से अपनी प्रशंसा नहीं करवाता और न स्वयं अपनी प्रशंसा करता है तथा जो कुतूहल नहीं करता, वह पूज्य है ।

सूत्र - ४६६

व्यक्ति गुणों से साधु होता है, अगुणों से असाधु । इसलिए साधु के योग्य गुणों को ग्रहण कर और असाधु-गुणों को छोड़े। आत्मा को आत्मा से जान कर जो रागद्वेष में सम रहता है, वही पूज्य होता है ।

सूत्र - ४६७

इसी प्रकार अल्पवयस्क या वृद्ध को, स्त्री या पुरुष को, अथवा प्रव्रजित अथवा गृहस्थ को उसके दुश्चरित की याद दिला कर जो साधक न तो उसकी हीलना करता है और न ही झिड़कता है तथा जो अहंकार और क्रोध का त्याग करता है, वही पूज्य होता है ।

सूत्र - ४६८

(अभ्युत्थान आदि द्वारा) सम्मानित किये गए आचार्य उन साधकों को सतत सम्मानित करते हैं, जैसे- (पिता अपनी कन्याओं को) यत्नपूर्वक योग्य कुल में स्थापित करते हैं, वैसे ही (आचार्य अपने शिष्यों को सुपथ में) स्थापित करते हैं; उन सम्मानार्ह, तपस्वी, जितेन्द्रिय, सत्यपरायण आचार्यों को जो सम्मानते हैं, वह पूज्य होता है ।

सूत्र - ४६९

जो मेधावी मुनि उन गुण-सागर गुरुओं के सुभाषित सुनकर, तदनुसार आचरण करता है; जो पंच महाव्रतों में रत, तीन गुणियों से गुप्त, चारों कषायों से रहित हो जाता है, वह पूज्य होता है ।

सूत्र - ४७०

जिन-(प्ररूपित) सिद्धान्त में निपुण, अभिगम में कुशल मुनि इस लोक में सतत गुरु की परिचर्या करके पूर्वकृत कर्म को क्षय कर भास्वर अतुल सिद्धि गति को प्राप्त करता है । -ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-९ - उद्देशक - ४**सूत्र - ४७१-४७२**

आयुष्मन् ! मैंने सुना है, उन भगवान् ने कहा है-स्थविर भगवन्तों ने विनयसमाधि के चार स्थान बताये हैं- विनय समाधि, श्रुतसमाधि, तपःसमाधि और आचारसमाधि । जो जितेन्द्रिय होते हैं, वे पण्डित अपनी आत्मा को इन चार स्थानों में निरत रखते हैं ।

सूत्र - ४७३-४७५

विनयसमाधि चार प्रकार की होती है । जैसे-अनुशासित किया हुआ (शिष्य) आचार्य के अनुशासन-वचनों को सुनना चाहता है; अनुशासन को सम्यक् प्रकार से स्वीकारता है; शास्त्र की आराधना करता है; और वह आत्म-प्रशंसक नहीं होता । इस (विषय) में श्लोक भी है-आत्मार्थी मुनि हितानुशासन सुनने की इच्छा करता है; शुश्रूषा करता है, उस के अनुकूल आचरण करता है; विनयसमाधि में (प्रवीण हूँ) ऐसे उन्माद से उन्मत्त नहीं होता ।

सूत्र - ४७६-४७८

श्रुतसमाधि चार प्रकार की होती है; जैसे कि-'मुझे श्रुत प्राप्त होगा,' 'मैं एकाग्रचित्त हो जाऊंगा,' 'मैं अपनी आत्मा को स्व-भाव में स्थापित करूँगा', एवं 'मैं दूसरों को स्थापित करूँगा' इन चारों कारणों से अध्ययन करना चाहिए । इस में एक श्लोक है-प्रतिदिन शास्त्राध्ययन के द्वारा ज्ञान होता है, चित्त एकाग्र हो जाता है, स्थिति होती है और दूसरों को स्थिर करता है तथा अनेक प्रकार के श्रुत का अध्ययन कर श्रुतसमाधि में रत हो जाता है ।

सूत्र - ४७९-४८०

तपःसमाधि चार प्रकार की होती है । यथा-इहलोक के, परलोक के, कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक के लिए, निर्जरा के अतिरिक्त अन्य किसी भी उद्देश्य से, चारों कारणों से तप नहीं करना चाहिए, सदैव विविध गुणों वाले तप में (जो साधक) रत रहता है, पौद्गलिक प्रतिफल की आशा नहीं रखता; कर्मनिर्जरार्थी होता है; वह तप के द्वारा पूर्वकृत कर्मों का क्षय कर डालता है और सदैव तपःसमाधि से युक्त रहता है ।

सूत्र - ४८१-४८२

आचारसमाधि चार प्रकार की है; इकलोह, परलोक, कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक, आर्हत हेतुओं के सिवाय अन्य किसी भी हेतु इन चारों को लेकर आचार का पालन नहीं करना चाहिए, यहाँ आचारसमाधि के विषय में एक श्लोक है- 'जो जिनवचन में रत होता है, जो क्रोध से नहीं भ्रान्ता, जो ज्ञान से परिपूर्ण है और जो अतिशय मोक्षार्थी है, वह मन और इन्द्रियों का दमन करने वाला मुनि आचारसमाधि द्वारा संवृत्त होकर मोक्ष को अत्यन्त निकट करने वाला होता है ।

सूत्र - ४८३-४८४

परम-विशुद्धि और (संयम में) अपने को भलीभाँति सुसमाहित रखने वाला जो साधु है, वह चारों समाधियों को जान कर अपने लिए विपुल हितकर, सुखावह एवं कल्याण कर मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है । जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है, नरक आदि सब पर्यायों को सर्वथा त्याग देता है । या तो शाश्वत सिद्ध हो जाता है, अथवा महर्द्धिक देव होता है ।

अध्ययन-९ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-१० - स भिक्षु

सूत्र - ४८५

जो तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा से प्रव्रजित होकर निर्ग्रन्थ-प्रवचन में सदा समाहितचित्त रहता है; स्त्रियों के वशीभूत नहीं होता, वमन किये हुए (विषयभोगों) को पुनः नहीं सेवन करता; वह भिक्षु होता है।

सूत्र - ४८६

जो पृथ्वी को नहीं खोदता, नहीं खुदवाता, सचित्त जल नहीं पीता और न पिलाता है, अग्नि को न जलाता है और न जलवाता है, वह भिक्षु है।

सूत्र - ४८७

जो वायुव्यंजक से हवा नहीं करता और न करवाता है, हरित का छेदन नहीं करता और न कराता है, बीजों का सदा विवर्जन करता हुआ सचित्त का आहार नहीं करता, वह भिक्षु है।

सूत्र - ४८८

(भोजन बनाने में) पृथ्वी, तृण और काष्ठ में आश्रित रहे हुए त्रस और स्थावर जीवों का वध होता है। इसलिए जो औद्देशिक का उपभोग नहीं करता तथा जो स्वयं नहीं पकाता और न पकवाता है, वह भिक्षु है।

सूत्र - ४८९

जो ज्ञातपुत्र (महावीर) के वचनों में रुचि (श्रद्धा) रख कर षट्कायिक जीवों (सर्वजीवों) को आत्मवत् मानता है, जो पांच महाव्रतों का पालन करता है, जो पांच (हिंसादि) आस्रवों का संवरण () करता है, वह भिक्षु है।

सूत्र - ४९०

जो चार कषायों का वमन करता है, तीर्थंकरों के प्रवचनों में सदा ध्रुवयोगी रहता है, अधन है तथा सोने और चाँदी से स्वयं मुक्त है, गृहस्थों का योग नहीं करता, वही भिक्षु है।

सूत्र - ४९१

जिसकी दृष्टि सम्यक् है, जो सदा अमूढ है, ज्ञान, तप और संयम में आस्थावान् है तथा तपस्या से पुराने पाप कर्मों को नष्ट करता है और मन-वचन-काया से सुसंवृत है, वही भिक्षु है।

सूत्र - ४९२

पूर्वोक्त एषणाविधि से विविध अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को प्राप्त कर-'यह कल या परसों काम आएगा,' इस विचार से जो संचित न करता है और न कराता है, वह भिक्षु है।

सूत्र - ४९३

पूर्वोक्त प्रकार से विविध अशन आदि आहार को पाकर जो अपने साधर्मिक साधुओं को निमन्त्रित करके खाता है तथा भोजन करके स्वाध्याय में रत रहता है, वही भिक्षु है।

सूत्र - ४९४

जो कलह उत्पन्न करने वाली कथा नहीं करता और न कोप करता है, जिसकी इन्द्रियाँ निभृत रहती हैं, प्रशान्त रहता है। संयम में ध्रुवयोगी है, उपशान्त रहता है, जो उचित कार्य का अनादर नहीं करता, वही भिक्षु है।

सूत्र - ४९५

जो कांटे के समान चुभने वाले आक्रोश-वचनों, प्रहारों, तर्जनाओं और अतीव भयोत्पादक अट्टहासों को तथा सुख-दुःख को समभावपूर्वक सहन करता है; वही भिक्षु है।

सूत्र - ४९६

जो श्मशान में प्रतिमा अंगीकार करके (वहाँ के) अतिभयोत्पादक दृश्यों को देख कर भयभीत नहीं होता, विविध गुणों एवं तप में रत रहता है, शरीर की भी आकांक्षा नहीं करता, वही भिक्षु है।

सूत्र - ४९७

जो मुनि बार-बार देह का व्युत्सर्ग और (ममत्व) त्याग करता है, किसी के द्वारा आक्रोश किये जाने, पीटे जाने अथवा क्षत-विक्षत किये जाने पर भी पृथ्वी के समान क्षमाशील रहता है, निदान नहीं करता तथा कौतुक नहीं करता, वही भिक्षु है।

सूत्र - ४९८

जो अपने शरीर से परीषहों को जीत कर जातिपथ से अपना उद्धार कर लेता है, जन्ममरण को महाभय जान कर श्रमणवृत्ति के योग्य तपश्चर्या में रत रहता है, वही भिक्षु है।

सूत्र - ४९९

जो हाथों, पैरों, वाणी और इन्द्रियों से संयत है, अध्यात्म में रत है, जिसकी आत्मा सम्यक् रूप से समाधिस्थ है और जो सूत्र तथा अर्थ को विशेष रूप से जानता है; वह भिक्षु है।

सूत्र - ५००

जो उपधि में मूर्च्छित नहीं है, अगृह्य है, अज्ञात कुलों से भिक्षा की एषणा करता है, संयम को निस्सार कर देने वाले दोषों से रहित है; क्रय-विक्रय और सन्निधि से रहित है तथा सब संगों से मुक्त है, वही भिक्षु है।

सूत्र - ५०१

जो भिक्षु लोलुपता-रहित है, रसों में गृह्य नहीं है, अज्ञात कुलों में भिक्षाचरी करता है, असंयमी जीवन की आकांक्षा नहीं करता, ऋद्धि, सत्कार और पूजा का त्याग करता है, जो स्थितात्मा है और छल से रहित है, वही भिक्षु है।

सूत्र - ५०२

'प्रत्येक व्यक्ति के पुण्य-पाप पृथक्-पृथक् होते हैं,' ऐसा जानकर, जो दूसरों को (यह) नहीं कहता कि 'यह कुशील है।' तथा दूसरा कुपित हो, ऐसी बात भी नहीं कहता और जो अपनी आत्मा को सर्वोत्कृष्ट मानकर अहंकार नहीं करता, वह भिक्षु है।

सूत्र - ५०३

जो जाति, रूप, लाभ, श्रुत का मद नहीं करता है; उनको त्यागकर धर्मध्यान में रत रहता है, वही भिक्षु है

सूत्र - ५०४

जो महामुनि शुद्ध धर्म-का उपदेश करता है, स्वयं धर्म में स्थित होकर दूसरे को भी धर्म में स्थापित करता है, प्रव्रजित होकर कुशील को छोड़ता है तथा हास्योत्पादक कुतूहलपूर्ण चेष्टाएँ नहीं करता, वह भिक्षु है।

सूत्र - ५०५

अपनी आत्मा को सदा शाश्वत हित में सुस्थित रखने वाला पूर्वोक्त भिक्षु इस अशुचि और अशाश्वत देहवास को सदा के लिए छोड़ देता है तथा जन्म-मरण के बन्धन को छेदन कर सिद्धगति को प्राप्त कर लेता है। - ऐसा मैं कहता हूँ।

अध्ययन-१० का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

चूलिका-१-रतिवाक्य

सूत्र - ५०६

इस निर्गन्ध-प्रवचन में जो प्रव्रजित हुआ है, किन्तु कदाचित् दुःख उत्पन्न हो जाने से संयम में उसका चित्त अरतियुक्त हो गया। अतः वह संयम का परित्याग कर जाना चाहता है, किन्तु संयम त्यागा नहीं है, उससे पूर्व इन अठारह स्थानों का सम्यक् प्रकार से आलोचन करना चाहिए।

ये अठारह स्थान अश्व के लिए लगाम, हाथी के लिए अंकुश और पोत के लिए पताका समान हैं। जैसे-ओह ! दुष्प्रमा आरे में जीवन दुःखमय है। गृहस्थों के कामभोग असार एवं अल्पकालिक हैं। मनुष्य प्रायः कपटबहुल हैं। मेरा यह दुःख चिरकाल नहीं होगा। गृहवास में नीच जनों का पुरस्कार-सत्कार (करना पड़ेगा।) पुनः गृहस्थवास में जानेका अर्थ है-वमन किये हुए का वापिस पीना। नीच गतियों में निवास को स्वीकार करना।

अहो ! गृहवास में गृहस्थों के लिए शुद्ध धर्म निश्चय ही दुर्लभ है। वहाँ आतंक उसके वध का कारण होता है। वहाँ संकल्प वध के लिए होता है। गृहवास क्लेश-युक्त है, मुनिपर्याय क्लेशरहित है। गृहवास बन्ध है, श्रमणपर्याय मोक्ष है। गृहवास सावद्य है, मुनिपर्याय अनवद्य है। गृहस्थों के कामभोग बहुजन-साधारण हैं। प्रत्येक के पुण्य और पाप अपने-अपने हैं। मनुष्यों का जीवन कुश के अग्र भाग पर स्थित जलबिन्दु के समान चंचल है, निश्चय ही अनित्य है। मैंने पूर्व बहुत ही पापकर्म किये हैं। दुष्ट भावों से आचरित तथा दुष्पराक्रम से अर्जित पूर्वकृत पापकर्मों का फल भोग लेने पर ही मोक्ष होता है, अथवा तप के द्वारा क्षय करने पर ही मोक्ष होता है।

सूत्र - ५०७-५०८

इस विषय में कुछ श्लोक हैं-जब अनार्य (साधु) भोगों के लिए (चारित्र-) धर्म को छोड़ता है, तब वह भोगों में मूर्च्छित बना हुआ अज्ञ अपने भविष्य को सम्यक्तया नहीं समझता। वह सभी धर्मों में परिभ्रष्ट हो कर वैसे ही पश्चात्ताप करता है, जैसे आयु पूर्ण होने पर देवलोक के वैभव से च्युत हो कर पृथ्वी पर पड़ा हुआ इन्द्र।

सूत्र - ५०९-५११

जब (साधु प्रव्रजित अवस्था में होता है, तब) वन्दनीय होता है, वही पश्चात् अवन्दनीय हो जाता है, तब वह उसी प्रकार पश्चात्ताप करता है, जिस प्रकार अपने स्थान से च्युत देवता। पहले पूज्य होता है, वही पश्चात् अपूज्य हो जाता है, तब वह वैसे ही परिताप करता है, जैसे राज्य से भ्रष्ट राजा। पहले माननीय होता है, वही पश्चात् अमाननीय हो जाता है, तब वह वैसे ही पश्चात्ताप करता है, जैसे कर्बट में अवरुद्ध सेठ।

सूत्र - ५१२-५१४

उत्प्रव्रजित व्यक्ति यौवनवय के व्यतीत हो जाने पर जब वृद्ध होता है, तब वैसे ही पश्चात्ताप करता है, जैसे कांटे को निगलने के पश्चात् मत्स्य। दुष्ट कुटुम्ब की कुत्सित चिन्ताओं से प्रतिहत होता है, तब वह वैसे ही परिताप करता है, जैसे बन्धन में बद्ध हाथी। पुत्र और स्त्री से घिरा हुआ और मोह की परम्परा से व्याप्त वह पंक में फंसे हुए हाथी के समान परिताप करता है।

सूत्र - ५१५

यदि मैं भावितात्मा और बहुश्रुत होकर जिनोपदिष्ट श्रामण्य-पर्याय में रमण करता तो आज मैं गणी (आचार्य) होता।

सूत्र - ५१६-५१७

(संयम में) रत महर्षियों के लिए मुनि-पर्याय देवलोक समान और जो संयम में रत नहीं होते, उनके लिए

महानरक समान होता है। इसलिए मुनिपर्याय में रत रहनेवालों का सुख देवों समान उत्तम जानकर तथा नहीं रहनेवालों का दुःख नरक समान तीव्र जानकर पण्डितमुनि मुनिपर्याय में ही रमण करे।

सूत्र - ५१८

जिसकी दाढ़ें निकाल दी गई हों, उस घोर विषधर की साधारण अज्ञ जन भी अवहेलना करते हैं, वैसे ही धर्म से भ्रष्ट, श्रामण्य रूपी लक्ष्मी से रहित, बुझी हुई यज्ञाग्नि के समान निस्तेज और दुर्विहित साधु की कुशील लोग भी निन्दा करते हैं।

सूत्र - ५१९

धर्म से च्युत, अधर्मसेवी और चारित्र को भंग करनेवाला इसी लोक में अधर्मी कहलाता है, उसका अपयश और अपकीर्ति होती है, साधारण लोगों में भी वह दुर्नाम हो जाता है और अन्त में उसकी अधोगति होती है।

सूत्र - ५२०

वह संयम-भ्रष्ट साधु आवेशपूर्ण चित्त से भोगों को भोग कर एवं तथाविध बहुत-से असंयम का सेवन करके दुःखपूर्ण अनिष्ट गति में जाता है और उसे बोधि सुलभ नहीं होती।

सूत्र - ५२१

दुःख से युक्त और क्लेशमय मनोवृत्ति वाले इस जीव की पल्योपम और सागरोपम आयु भी समाप्त हो जाती है, तो फिर हे जीव ! मेरा यह मनोदुःख तो है ही क्या ?

सूत्र - ५२२

'मेरा यह दुःख चिरकाल तक नहीं रहेगा, जीवों की भोग-पिपासा अशाश्वत है। यदि वह इस शरीर से न मिटी, तो मेरे जीवन के अन्त में तो वह अवश्य मिट जाएगी।

सूत्र - ५२३

जिसकी आत्मा इस प्रकार से निश्चित होती है। वह शरीर को तो छोड़ सकता है, किन्तु धर्मशासन को छोड़ नहीं सकता। ऐसे दृढ़प्रतिज्ञ साधु को इन्द्रियाँ उसी प्रकार विचलित नहीं कर सकतीं, जिस प्रकार वेगपूर्ण गति से आता हुआ वायु सुदर्शन-गिरि को।

सूत्र - ५२४

बुद्धिमान् मनुष्य इस प्रकार सम्यक् विचार कर तथा विविध प्रकार के लाभ और उनके उपायों को विशेष रूप से जान कर तीन गुप्तियों से गुप्त होकर जिनवचन का आश्रय लें। -ऐसा मैं कहता हूँ।

चूलिका-१ का मुनि दीपरत्नसागर कृत हिन्दी अनुवाद पूर्ण

चूलिका-२-विविक्तचर्या

सूत्र - ५२५

मैं उस चूलिका को कहूँगा, जो श्रुत है, केवली-भाषित है, जिसे सुन कर पुण्यशाली जीवों की धर्म में मति उत्पन्न होती है ।

सूत्र - ५२६-५२८

(नदी के जलप्रवाह में गिर कर समुद्र की ओर बहते हुए काष्ठ के समान) बहुत-से लोग अनुस्रोत संसार-समुद्र की ओर प्रस्थान कर रहे हैं, किन्तु जो मुक्त होना चाहता है, जिसे प्रतिस्रोत होकर संयम के प्रवाह में गति करने का लक्ष्य प्राप्त है, उसे अपनी आत्मा को प्रतिस्रोत की ओर ले जाना चाहिए ।

अनुस्रोत संसार है और प्रतिस्रोत उसका उत्तार है । साधारण संसारीजन को अनुस्रोत चलनेमें सुख की अनुभूति होती है, किन्तु सुविहित साधुओंके लिए आश्रव प्रतिस्रोत होता है । इसलिए आचार (-पालन) में पराक्रम करके तथा संवरमें प्रचुर समाधियुक्त होकर, साधु को अपनी चर्या, गुणों-नियमों की ओर दृष्टिपात करना चाहिए ।

सूत्र - ५२९

अनियतवास, समुदान-चर्या, अज्ञातकुलों से भिक्षा-ग्रहण, एकान्त स्थान में निवास, अल्प-उपधि और कलह-विवर्जन; यह विहारचर्या ऋषियों के लिए प्रशस्त है ।

सूत्र - ५३०

आकीर्ण और अवमान नामक भोज का विवर्जन एवं प्रायः दृष्टस्थान से लाए हुए भक्त-पान का ग्रहण, (ऋषियों के लिए प्रशस्त है ।) भिक्षु संसृष्टकल्प से ही भिक्षाचर्या करें ।

सूत्र - ५३१

साधु मद्य और मांस का अभोजी हो, अमत्सरी हो, बार-बार विषयों को सेवन न करनेवाला हो, बार-बार कायोत्सर्ग करनेवाला और स्वाध्याय के योगो में प्रयत्नशील हो ।

सूत्र - ५३२

यह शयन, आसन, शय्या, निषट्टा तथा भक्त-पान आदि जब मैं लौट कर आऊँ, तब मुझे ही देना ऐसी प्रतिज्ञा न दिलाए । किसी ग्राम, नगर, कुल, देश पर या किसी भी स्थान पर ममत्वभाव न करे ।

सूत्र - ५३३

मुनि गृहस्थ का वैयावृत्त्य न करे । गृहस्थ का अभिवादन, वन्दन और पूजन भी न करे । मुनि संक्लेशरहित साधुओं के साथ रहे, जिससे गुणों की हानि न हो ।

सूत्र - ५३४

कदाचित् गुणों में अधिक अथवा गुणों में समान निपुण सहायक साधु न मिले तो पापकर्मों को वर्जित करता हुआ, कामभोगों में अनासक्त रहकर अकेला ही विहार करे ।

सूत्र - ५३५

वर्षाकाल में चार मास और अन्य ऋतुओं में एक मास रहने का उत्कृष्ट प्रमाण है । वहीं दूसरे वर्ष नहीं रहना चाहिए । सूत्र का अर्थ जिस प्रकार आज्ञा दे, भिक्षु उसी प्रकार सूत्र के मार्ग से चले ।

सूत्र - ५३६-५३७

जो साधु रात्रि के प्रथम प्रहर और पिछले प्रहर में अपनी आत्मा का अपनी आत्मा द्वारा सम्प्रेक्षण करता है

कि-मैंने क्या किया है ? मेरे लिए क्या कृत्य शेष रहा है ? वह कौन-सा कार्य है, जो मेरे द्वारा शक्य है, किन्तु मैं नहीं कर रहा हूँ ? क्या मेरी स्खलना को दूसरा कोई देखता है ? अथवा क्या अपनी भूल को मैं स्वयं देखता हूँ ? अथवा कौन-सी स्खलना मैं नहीं त्याग रहा हूँ ? इस प्रकार आत्मा का सम्यक् अनुप्रेक्षण करता हुआ मुनि अनागत में प्रतिबन्ध न करे ।

सूत्र - ५३८

जिस क्रिया में भी तन से, वाणी से अथवा मन से (अपने को) दुष्प्रयुक्त देखे, वहीं (उसी क्रिया में) धीर सम्भल जाए, जैसे जातिमान् अश्व लगाम खींचते ही शीघ्र संभल जाता है ।

सूत्र - ५३९

जिस जितेन्द्रिय, धृतिमान् सत्पुरुष के योग सदा इस प्रकार के रहते हैं, उसे लोक में प्रतिबुद्धजीवी कहते हैं, वही वास्तव में संयमी जीवन जीता है ।

सूत्र - ५४०

समस्त इन्द्रियों को सुसमाहित करके आत्मा की सतत रक्षा करनी चाहिए, अरक्षित आत्मा जातिपथ को प्राप्त होता है और सुरक्षित आत्मा सब दुःखों से मुक्त हो जाता है । -ऐसा मैं कहता हूँ ।

चूलिका-२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

[४२] दशवैकालिक-मूलसूत्र -३-हिन्दी अनुवाद पूर्ण

नमो नमो निम्मलदंसणस्स
पूज्यपाद् श्री आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुर्भ्यो नमः

४२

दशवैकालिक आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

[अनुवादक एवं संपादक]

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

वेब साइट:- (1) www.jainelibrary.org (2) deepratnasagar.in

ईमेल ऐड्रेस:- jainmunideepratnasagar@gmail.com मोबाईल 09825967397